॥ श्री ॥

भवभूति कृत

उत्तर-रामचरित-नाटक

(संशोधित और परिवर्धित संस्करण)



अनुवादक

स्व० कविरत्न प० सत्यनारायण शर्मा,



सम्पादक

अध्यापक रामरत्न

चतुर्थ वार } स० १९८९ { मूल्य ११=)

प्रकाशक—
रत्नाश्रम, आगरा।



मुद्रक—
चन्द्रहंस शर्मा, विशारद
रत्नाश्रम फाइन आर्टस् प्रिंटिंग वर्क्स
बाग मुजफ्फरखाँ, आगरा।

उत्तर रामचरित का नया संस्करण



आज उत्तर-राम चरित नाटक का नया सस्करण प्रकाशित हो रहा है। यों तो सस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद करने का अनेक लेखकों ने प्रयास किया है, किन्तु राजा लक्ष्मणसिंह जी के शाकुन्तला-नाटक और भारतेन्दुजी के मुद्राराक्षस और सत्य हरिश्चन्द्र के बाद कविरत्न सत्यनारायणजी के उत्तर राम-चरित और मालतीमाधव नाटकों का नाम ही उसी ख्याति के साथ हमारे सामने आया है। अनेक गण्यमान्य लेखक और सुख्यात सस्थाओं ने इन ग्रन्थों का समुचित आदर करके उनका वास्तविक स्वरूप जनता के सामने प्रगट कर दिया है। उत्तर राम-चरित और मालतीमाधव नाटकों को काशी, पटना, प्रयाग, आगरा और पञ्जाब विश्वविद्यालयों ने अपनी एम० ए० और बी० ए० आदि की उपाधि परीक्षाओं के पाठ्य क्रम में रखकर गुण ग्राहकता का परिचय दिया है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने तो प्रारम्भ में सूर, तुलसी और हरिश्चन्द्र के साथ ही सत्यनारायण को अपने सामने रक्खा है। आशा है हिन्दी जगत में दिन दूना रात चौगुना आदर इन ग्रथों का होगा।

चौथा सस्करण

यह उत्तर-राम-चरित नाटक का चौथा परिमार्जित सस्करण तैयार हुआ है और इसे युक्त प्रदेशीय इन्टर मीजियेट बोर्ड ने इन्टर मीजियेट क्लास के लिये पाठ्य पुस्तक के रूप में स्वीकृत किया है एतदर्थ उसके प्रति हम सादर कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं —

— प्रकाशक

नाटक के पात्र

पुरुष

रामचन्द्र—अयोध्या के सूर्यवंशी राजा
लक्ष्मण, शत्रुघ्न — राम के भाई
जनक—राम के श्वसुर मिथिला नरेश
अष्टावक्र—शृंग ऋषि के शिष्य
शम्बूक—एक शूद्र तपस्वी
वाल्मीकि—एक ऋषि
सौधातकि, भाण्डायन — वाल्मीकि के शिष्य
कुश, लव — राम के पुत्र
चन्द्रकेतु—लक्ष्मण का पुत्र
सुमन्त—सारथी
विद्याधर—देव विशेष

स्त्रियाँ

सीता—राम की पत्नी, जानकी
वासन्ती—सीता की सहेली वनदेवी
आत्रेयी—एक ब्रह्मचारिणी
कौशिल्या—राम की माता
तमसा, मुरला, भागीरथी — स्त्री रूप में नदी विशेष
वसुन्धरा—पृथ्वी, सीता की माता
अरुन्धती—गुरु वशिष्ठ की पत्नी
विद्याधरी—देवी विशेष

दुर्मुख, कञ्चुकी प्रतिहारी लड़के, सैनिक, आदि

स्थान—अयोध्या, पंचवटी, जनस्थान, वाल्मीकाश्रम।

॥ श्री ॥

समर्पण

जिन का अश्रुत पूर्व अनुग्रह वर्णनातीत है, जो
मानव-शरीर में प्रेम और दया के साक्षात्
अवतार थे, जिन से इस जन्म में तो
क्या जन्मान्तर में भी उऋण नहीं
हो सकता, उन्हीं वैकुण्ठ-वासी
पवित्र हृदय

श्री गुरुदेव

को

यह अकिञ्चन भेंट
सप्रेम सादर समर्पित है।

—सत्यनारायण

॥ श्री हरि ॥

अनुवादक की भूमिका

कविवर भवभूति

भवभूत सम्बन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति ।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ॥१॥

(आर्या सप्तशती)



हाकवि कालिदास की भाँति भवभूति का भी नाम, भारतवर्ष में ही नहीं समस्त भूमण्डल के विद्वानों में प्रसिद्ध है। इनके लेख प्रकृति और मानवी प्रकृति के सच्चे निरीक्षण तथा असामान्य ओजपूर्ण वर्णनात्मक चित्रण से परिपूर्ण हैं। कालिदास के समान इनका वंश परिचय असम्भव नहीं है। इनके जीवन-काल की बहुत सी बातों का यद्यपि पता नहीं लगता तथापि अपने कुल वृत्तान्त का भावी लोगों को पता देने का उन्होंने उपाय कर दिया है

वंश तथा जन्म-स्थान का परिचय

स्वरचित नाटकों की प्रस्तावनाओं में सूत्रधार के मुख से उन्होंने जो अपने जन्मस्थान तथा वंश का परिचय दिया है, उसके सिवाय इस विषय में अधिक जानने का और कुछ उपाय नहीं है। आपने महावीरचरित नाटक के प्रारम्भ में अपना परिचय इस प्रकार दिया है। दक्षिण की ओर (विदर्भ देशान्तर्गत)

पद्मपुर नामक नगर में कृष्णयजुर्वेदीतैत्तरीयशाखा के काश्यप-गोत्रीय, पंक्ति-पावन पञ्चाग्निपूजक सोमरस पान करने वाले उदुम्बर नामधारी ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण रहा करते थे। उनके वंश में महाकवि नामक एक महानुभाव ने वाजपेय यज्ञ का अनुष्ठान किया था, इसी कुल में गोपाल भट्ट ने जन्म ग्रहण किया और उनके पवित्र कीर्ति नीलकण्ठ हुए। यही नीलकण्ठ श्रीकण्ठपद सम्पन्न कवि भवभूति के पिता थे। इनकी माता का नाम जातुकर्णी × तथा गुरू का नाम ज्ञाननिधि था।

उक्त लेख से ज्ञात होता है कि भवभूति कहीं बरार के आस पास के रहने वाले थे। दण्डकारण्य तथा गोदावरी नदी के मनोहर मनोज्ञ वर्णन से इस मत की भली भाँति पुष्टि होती है।

समय

यह किस समय हुए इसका जानना कठिन है, क्योंकि अपने नाटकों में इन्होंने कहीं तिथि संवत् आदि नहीं दिया है और न इनकी जन्म-तिथि आदि का कुछ पता है। उसका पता केवल अनुमान से चल सकता है।

१—संस्कृत के पण्डितों में एक दन्तकथा प्राचीन काल से प्रचलित है कि जब भवभूति ने अपना उत्तर-रामचरित-नाटक कालिदास को सुनाया तो उसे सुनकर वह अत्यन्त विस्मित हुए और आनन्दमग्न हो उसे माथे पर रख कर धन्य धन्य कहने लगे। उन्होंने केवल प्रथम अङ्क के सत्ताईसवें श्लोक के अंतिम चरण '*अविदित गतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्*' में भवभूति को सूचित किया "एव" पद के स्थान में "एवं" पद प्रयुक्त किया जाय तो अर्थ विशेष शोभाप्रद होगा। सुना जाता है कि उन्होंने इसे स्वीकार किया और अब तक उक्त श्लोक में वही पाठ चला आता है। इस मनोरञ्जक कथा में कोई बात असम्भव नहीं

× पाठान्तर—जतुकर्णी

जान पड़ती क्योंकि इस नाटक की योग्यता ऐसी ही है कि शकुन्तला-नाटक लिखने वाला भी उसे शिरोधार्य करे। साथही कालिदास की विशाल बुद्धि तथा निरभिमानता का भी अच्छा परिचय मिलता है।*

इस किम्वदन्ती के अनुसार बहुतेरे लोग भवभूति को कालिदास का समकालीन मानते हैं। किन्तु इसके विरुद्ध प्रचुर प्रमाण हैं --

१-प्रथम तो कालिदासकी कीर्त्ति प्राचीनकाल से ही आबाल-वृद्धों को विदित है और भवभूति को केवल पण्डित लोग ही जानते हैं। यदि वह कालिदास के समय में हुए होते तो जिन लोगों ने शकुन्तला तथा विक्रमार्वशी की प्रशंसा की है उन लोगों ने उत्तर राम चरित और मालती-माधव की प्रशंसा की होती।

२ दूसरे कालिदास के समय की सरल स्वाभाविक रचना शैली से भवभूति का रचना क्रम बहुत ही भिन्न है।

तीसरे भवभूति के नाटकों में कालिदास के ग्रन्थों को अनुनित कर लिखे हुए कुछ स्थल भी पाये जाते हैं।

२-राजतरंगिणी के मतानुसार भवभूति का सम्बन्ध कन्नौज के महाराज यशोवर्मा के दरबार के साथ था, जो उस समय भारतवर्ष में विद्या का केन्द्रस्थल था यहीं भवभूति ने निस्सन्देह काव्य और नाटक के नियम सीखे जिनके कारण उनकी बुद्धि का प्रकाश और भी विशद रूप से हुआ। किन्तु उनके भाग्य में कन्नौज का रहना नहीं था, क्योंकि यशोवर्मा को कश्मीर के प्रतापी राजा ललितादित्य ने पराजित किया और उसके साथ उन्हें कश्मीर जाना पड़ा।

कविर्वाक्पतिराजश्री भवभूत्यादि सेवित
जित ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम्।

राज ४ १३५

---

* विपत्तूणाकर

इस श्लोक में ललितादित्य के प्रताप का वर्णन किया गया है और वाकपति का भी नाम आता है जो भवभूति के साथ ही साथ कन्नौज दरबार की शोभा बढाते थे । इन्होंने निज चरित 'गोड़वहो' नामक प्राकृतभाषा के ग्रन्थ में भवभूति का नाम दिया है।

(प्राकृत) भवभइ जलहि निग्गय कव्वा मय रस कणा इव फुरान्दि
अस्स विसेसा अज्जवि वियडेसु कहा पवन्धेसु ॥*

जनरल कनिघम के मतानुसार ललितादित्य का राजत्व-काल सन ६९३ से ७२९ पर्यन्त है। इसी प्रमाण से डाक्टर भाण्डारकर प्रभृति भवभूति का समय सातवीं शताब्दी के आदि में ठहराते हैं।

३—श्रीहर्षचरित की प्रस्तावना के आदि के श्लोक में उसके रचयिता बाण कवि ने (जिनका समय सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में होना निश्चय है) अपने से पूर्व अन्य कवियों का तो वर्णन किया है किन्तु भवभूति के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है।

४—भवभूति की भाषा शैली से उनका आठवीं शताब्दी में होना पुष्ट होता है क्योंकि बाण श्रीहर्षादि तदनन्तर के कवियों ने लम्बे लम्बे समासों की कृत्रिम रचना प्रणाली जो धीरे धीरे प्रचलित की वही उनके नाटकों में जहाँ तहाँ पर लक्षित होती है। इसलिये शैली-क्रम के अनुसार भवभूति को कवि सुबन्धु, दण्डी और बाण की श्रेणी में परिगणित करना तथा उसी समय के आसपास उसके प्रादुर्भाव को मानना अधिक सयुक्तिक जान पड़ता है। इन सब बातों से अनुमान किया जा सकता है कि कालिदास के पीछे ही भवभूति हुए होंगे क्योंकि जब उस कवि-केशरी की गर्जना शेष हो जाने पर चारों ओर सन्नाटा छा गया और लोगों को जान पडने लगा कि अब पुनः वैसी गर्जना का होना कठिन है तब पहले का स्मरण दिलाने वाले सुतरां उससे भी

कहीं प्रचड दूसरे की गभीर गर्जना कर्ण कुहर मे प्रविष्ट होने लगी यह बात वास्तव मे अधिक चमत्कार-जनक मालूम पडती है।

भवभूति

कवि के हृदय की परीक्षा तत्प्रणीत ग्रन्थों तथा तदधिकृत विषयो से ही हुआ करती है। कविहृदयनिर्गतभावमालिका का आस्वादन करने के पूर्व उसके ही विषय मे परिज्ञान प्राप्त करना परमावश्यक है।

१-आत्मश्लाघा—उत्तर-राम-चरित नाटक म पहले ही आत्मश्लाघा मिलती है-*"वचन के बस जासु सरस्वती करति काज मनौ निज भामिनी"*(अ०१श्लो०२) आपने अपने कुल का परिचय सूत्रधार के मुख से दिलाते हुए अपने पदवाक्यप्रमाणज्ञ होनेकी प्रशसा कराई है। इस प्रकार का परिचय उसे उक्त दोष से दूषित करता है किंतु तनिक विचार करने पर ज्ञात हो जायगा कि यह विचार सर्वथा यथार्थ नहीं है। यह माना कि अपने मुँह अपनी प्रशसा करना उचित नहीं है, तथापि ससार के बडे बडे ग्रन्थकारों ने जो अपना अपना जीवन-चरित्र स्वय लिखा है उसकेलिये उन्हे कोई दोष नहीं देता सुतरा ये जीवन वृतान्त होने के कारण बडे आदर की वस्तु समझे जाते हैं, और लोग उन्हे बडे चाव से पढते हैं। जिस प्रकार समर भूमि मे महान वीरो की वीरोक्तियो से आत्मश्लाघा सयुक्त होने पर भी सुनने वालों का जी उकताता नहीं है वरन वे उसे बडे उत्साह के साथ श्रवण करते हैं, ठीक उसी भाँति रसिक- जन भी जगत-पूज्य कवीश्वरों की आत्मदर्पोक्ति पर बहुत ही रीझते है। व उन्हें बार बार पढते हैं कभी तृप्त नहीं होते, जब जब उन्हें पढते हैं तब तब अधिकाधिक तन्मय होते जाते हैं।

इसके सिवाय दूसरी बात यह भी है कि जिस किसी को गुणवान गुणग्राहकों द्वारा पहले ही आदर सम्मान प्राप्त हो चुका है तब उसे आत्मश्लाघा के आश्रय की आवश्यकता नहीं रहती। गुणी

सत्परीक्षकों की प्रशंसा से सतुष्ट हो अपने परिश्रम को सफल मान कर स्वस्थ रहते हैं, पर जब ऐसा नहीं होता, अर्थात् गुण की चाह नहीं होती किंतु उलटा उसका उपहास और अपमान होता है, "*नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि*" वाले नियम को भूलकर जब लोग किसी प्रचंड ग्रन्थकार की अवज्ञा किया चाहते हैं तब उस स्वापमान की घोर यत्रणा से व्याकुल हो कर उसे अपनी योग्यता प्रदर्शित करने के लिये आत्मप्रशसा के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं सूझता। भवभूति की भी यही दशा हुई होगी, आत्मकवित्व का उन्हें बड़ा दृढ़ विश्वास था, उनका यह सुदृढ़ निश्चय निन्दकों की अवज्ञा या अपने ग्रन्थों की यथेष्ट ख्याति न होने से अथवा इस भय से कि कदाचित ये नष्ट न हो जाँय, किंचित् भी न हटा। अपने समय के लोगों की निन्दा से हतोत्साह न हो उन्होंने भावीकाल ही पर भरोसा रक्खा और "भविष्य में मत्कृति अभिनन्दित होगी" यह उन्होंने भविष्य कथन किया (चिप०) इसका प्रत्यक्ष प्रमाण स्वरूप उन्हीं का बनाया एक श्लोक उद्धृत किया जाता है —

"ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां,
जानन्तु ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्तु मम कोऽपि समानधर्मा*
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ।"
(मालती माधव नाटक)

अस्तु, इससे यही प्रतिपादित हुआ कि महान ग्रन्थकारों के *आत्म विषयक लेख दूषणार्ह नहीं हैं किन्तु वे परमोपयोगी हैं,* इन्हें आत्मश्लाघा न कह कर आत्मगौरव कहना अधिक उचित मालूम होता है क्योंकि आत्मयोग्यता के ज्ञान पर ही इसकी निर्भरता है।

*पाठान्तर— 'उत्पस्यतेममतुकोऽपि"

२—कर्त्तव्यपरायणता—इस सद्गुण का तो इन में इतना प्राचुर्य है कि उसे पूर्ण करने की धुन के आगे यह लोगों के कहने सुनने का कुछ भी विचार नहीं करते। समालोचकों की प्रचण्ड-वचनवाणावली से इनका आत्मशासन यत्किञ्चित भी नहीं डिग मिगाता। अदम्य उत्साह के साथ निस्स्वार्थ भाव से सत्कर्त्तव्य क्षेत्र में निर्भय अग्रसर होना ही उनका एक मात्र जीवनोद्देश्य है। आपके सूत्रधार ने कहा भी है –

'चूक चाकरी में कबहु करनी चाहिए नाहि।
सब प्रकार निरदोस कहु को पदार्थ जग माहि॥
कुटिल मनुज सों रहि सकत को जग में निस्सक।
सद्वनिता कवितान में जा नित लसत कलक॥

प्रधान नायक मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र को कवि ने निस्स्वार्थ कर्त्तव्य परायणता की कैसी सजीव मूर्त्ति बनाकर दिखलाया है यह उसके पठन पाठन करने से ही विदित हो सकेगा।

३—हृदय की कोमलता-कर्त्तव्य पालन के साथ उनके हृदय में कोमलता का विकास भी भली भाँति परिलक्षित होता है। किसी का दुख ऐसा नहीं कि इनका मन द्रवीभूत हुआ नहीं। जनक के मिलने पर जब कौशिल्या चेत रहित हो गई है उस समय कवि से नहीं रहा गया और अरुन्धती के मुख से कहलवा ही दिया "पुरन्ध्रीणा चित्त कुसुमसुकुमार हि भवति"। कई स्थलों पर रामचन्द्र के कोमल हृदय का चित्र खींच कर इन्होंने मृदुल स्वभाव का परिचय दिया है।

४—सुहृदता—चाहे कुछ भी उपकार न करें किन्तु ये अपने सुहृद को अलौकिक वस्तु समझते हैं। गद्गदभाव से पूरित होकर आपने कहा है कि—

'बरु कछू न करै तउ सर्वदा, बसि समीप सबै विपदा हरै।
सुहृद जो कहुँ जासु जहान में, अवसि सो तिहि जीवन-मूरि है ॥
(—६-५)

५—सहृदयता—कवि का प्रधान गुण सहृदयता है। हृदय की शृंगार, वीर, करुणादि जो भिन्न भिन्न वृत्तियाँ हैं वे उसे अत्यन्त सूक्ष्म एवं स्पष्ट रूप से अनुभूत होनी चाहिये। उक्त भिन्न भिन्न वृत्तियों का विषय इन्द्रियगोचर होते ही कवि का मन क्षुब्ध हो जाता है और उस क्षुब्धता के आवेग में उसके मुख से जो बातें निकलती हैं वही यथार्थ कविता है। तात्पर्य यह है कि कवि का हृदय ऐसा होना चाहिये जिसमें भिन्न भिन्न मनोवृत्तियाँ पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित हो जायँ। यह नियम भवभूति की कविता में सर्वत्र चरितार्थ हो रहा है, उसका मन अत्यन्त निर्मल एवं प्रेमी है वैसे ही स्वभाव नितांत सरल अथच गम्भीर होने के कारण जिस प्रसंग का श्लोक देखिये मानो वह रस उससे टपका पड़ता है। इससे विशेष परिचय प्राप्त करने के लिए उत्तर-राम-चरित नाटक में राम वासंती सम्वाद, लव-चंद्रकेतु-वार्तालाप तथा राम-लव कुश-सम्मेलन आदि का वर्णन पढ़ना उचित प्रतीत होता है।

६—मन की शुद्धता—बहुतेरे यूरोपियन विद्वान संस्कृत कविता को यह दोष लगाते हैं कि उसमें शृंगार का उद्भव शुद्ध प्रेम रस से किया हुआ नहीं पाया जाता, किन्तु अधिकांश में वह काम वासना से प्रकट हुआ पाया जाता है। यह कथन हठवादियों के मतानुसार किसी अंश में यथार्थ भी है। क्योंकि प्राचीन कविगण स्वानुभूत बातों तथा मनोवृत्तियों का वर्णन किया करते थे पर क्रमशः जब कीर्ति या धन के लोभ से काव्य रचने की प्रथा चल पड़ी और कविता बनाना एक नियमित व्यवसाय ही हो गया तब से कवियों को स्वानुभव की कोई आवश्यकता नहीं रही। अपने आश्रयदाता भूपाल की रुचि के

अनुसार उनकी काव्यकला नर्तकी की भाँति नाचने लगी। इस प्रकार संस्कृत कविता का आत्म शुद्धस्वरूप जब से भ्रष्ट होने लगा तब के बहुतेरे काव्य, और अब इधर जिनकी प्रवृत्ति विशेष रूप से पाई गई वे वीभत्स भाणादि (नाटक का भेद) अलबत्ता उक्त दोष से दूषित हो सकते हैं। यदि यही एक बात होती कि उक्त दोष अकेली संस्कृत कविता ही में पाया जाता है तो भी कुछ कहना न था, पर क्या उक्त दोष ग्रीक और रोमन लोगों की कविता में नहीं पाया जाता? अथवा इतने दूर जाने की कोई आवश्यकता नहीं है क्या कोई कह सकता है कि अंग्रेजी भाषा का रस सर्वस्व जिस में एकत्रित किया गया है वह शेक्सपीयर कवि का कविताकलाप उक्त दोष से सर्वथा मुक्त है? यदि यह बात ऐसी ही है, तो कुटुम्ब के लोगों के अर्थात् पुरुष, स्त्री, लड़के आदि सब के एकत्र पढ़ने योग्य उस कवि की संक्षिप्त आवृत्ति अलग अलग क्यों निकलती है!

जो लोग पूर्व-देशीय भाषाओं के काव्य तथा निर्बन्ध-रहित-शृङ्गार वर्णन का परस्पर नित्य सम्बन्ध मानते हैं उन्हें उचित है कि वे हमारे भवभूति के नाटकों का पर्यालोचन करें।

ठकुर सुहाती न कहने के कारण अथवा वैसा करने को नीचता और अधमता समझने के कारण भवभूति लक्ष्मी के कृपापात्र न बन सके। उनके गभीर एवं उदार मन को राजाश्रित हो कर विभवानुभव करने की अपेक्षा दरिद्रावस्था ही में स्वतन्त्र रहकर अपनी वाग्देवी को निष्कलंक रखना अधिकतर अभीष्ट होगा ऐसा बोध होता है। किसी राजदरबार से उनका यथावत् सम्पर्क न रहने के कारण उनके मन की आद्यावस्था में कदापि अन्तर नहीं पड़ा और हम समझते हैं कि यही कारण है कि उनके शृङ्गार वर्णन में ऐसी अपूर्व कोमलता, प्रौढ़ता तथा शुद्धता दृष्टिगोचर होती है।

७—विद्वत्ता—अपने समय के बड़े बड़े पण्डितों में उनकी धाक जमी हुई थी। पदवाक्यप्रमाणज्ञ श्रीकण्ठपन्लाञ्छनादि -

वियो से तत्कालीन विद्वन्मण्डली द्वारा उनका मान किया गया था। उनकी रचना से भलीभाँति प्रगट होता है कि वे व्याकरण, न्याय, मीमासा आदि पट्दर्शनों के अच्छे पारदर्शी थे। इस नाटक में स्थल स्थल पर विवर्तवाद उनके वेदान्त शास्त्र के ज्ञान का प्रत्यक्ष प्रमाण है। वैराज और असूर्य लोको के वर्णन से उपनिषदों पर उनका अधिकार विदित होता है। इसमें सन्देह नहीं कि भवभूति अपने समय के असाधारण प्रतिभाशाली विद्वान् होगए हे और इसी कारण सस्कृत साहित्य में वे महाकवियो में परिगणित किये जाते है। इनकी विलक्षण शैली ही से इनका विद्याभिमान टपका पड़ता है।

८—सामाजिक विचार—और जैसे हिन्दू आचार्यों की भाँति इनका हृदय सकीर्ण नहीं था। इनके ग्रन्थों के पठन-पाठन से ही इनके उच्च उदार भावों का पता लगता है। जहाँ हिन्दू-समाज के विश्वासानुसार स्त्री और शूद्र को पढना ही नहीं चाहिये वहाँ इनके नाटक में सब स्त्रियाँ पढी हुई मिलेंगी और शूद्र भी ऐसा ज्ञानवान् निकलेगा जिसका विनम्र वाक्य "*सत्सगजानि निधनान्यपि तारयन्ति*" स्वर्णाक्षरो में लिखने योग्य है। इस नाटक में स्त्री जाति के भिन्न भिन्न रूपों का बडी उत्तमता से वर्णन किया गया है। कहीं पुत्री जानकी पिता जनक के चले जाने से शोकाकुल है। कहीं प्राणेश्वरी सीता का अनुपम चित्र खींचा जा रहा है। कहीं ब्रह्मचारिणी आत्रेयी वाल्मीकि के आश्रम में वेदाध्ययन के लिए अगस्त्याश्रम को आ रही है कहीं कौशिल्या माता, सास और समधिन बन कर आती हैं और भगवती अरुन्धती विदुषी और तपस्विनी के नाम को पूर्णतया चरितार्थ कर रही हैं। इसके पढने से ठीक ज्ञात हो जायगा कि भवभूति स्त्रियों को कितनी प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं। उनके विचार में स्त्रियाँ

पृष्ठ-१२७—नीर कन = पानी की बूंद। हीतल = हृदय। रविकुल कीरति प्रभा विस्तारिणी = सूर्य कुल की यश रूप धूप फैलाने वाली।

पृष्ठ-१२८—हिय की हिय में मायो = हृदय में ही अनुभव किया जा नहीं सकते। हृदय मर्मान्तक = दुखदाई। अमंद = उज्वल। मनोविनोद = मनबहलाव। विरमाय = विरमा कर, ठहरा कर।

पृष्ठ-१२९—जोम = उमंग, जोश, घमंड।

पृष्ठ-१३०—निराभरन = भूषण के बिना। जीरन = जीर्ण। सिसु कलह = बच्चों की लड़ाई।

पृष्ठ-१३१—मातहु = माता भी।

अंक ७

पृष्ठ-१३२—आरजी-वंस = आर्य वंश।

पृष्ठ-१३३—प्रां = प्राचीन। बोधन शक्ति शालिनी = ज्ञान कराने वाले शस्त्र।

पृष्ठ-१३४—नीर निसारति = आँसू निकालती है। निसरान = निरनाम। जने = पैदा किये।

पृष्ठ-१३५—अयोनिजा = जो मनुष्ययोनि से पैदा न हुई हो। जोग = योगविद्या। जनक = पिता। हुतासु = अग्नि। मल छीन = उज्वल। लरकबुद्धि = बालकों की सी बुद्धि, ये समझो।

पृष्ठ-१३७—अपकीरति = अपकीर्ति। चवाइन = पीठ पीछे बुराई करने वालों की निन्दा से।

पृष्ठ-१३९—सिरसा = सिर से। सुघर = सुन्दर।

पृष्ठ-१४०—नग महि प्रसादु = गङ्गा और पृथ्वी का आशीर्वाद। छोभसा = दुख से। निकाई = शोभा।

पृष्ठ-१४१—जन्म सिद्ध = स्वाभाविक। लोकान्तर = स्वर्ग।

पृष्ठ-१४२—विडोलत = चंचल। अन्तरिच्छमझार = आकाश के

धीच में। जगतवन्दिनी = संसार से पूजी जाने वाली। छियाओ = स्पर्श करो।

पृष्ठ–१७६—कलिमल कुल = पापों के समूह के दूर करने वाले। मुद विकासिनी = आनन्द देने वाली।

॥ इति ॥

न केवल प्रेम की प्रतिमा और सुख की मूर्त्ति ही है वरन वे आदर की सामग्री और पूजन के योग्य हैं।*

राजर्षि जनक के मुख से अरुन्धती का अभिवादन करते हुए कवि ने उपरोक्त विचार की पुष्टि की है (अंक ४—श्लोक १०)। इनके विचार में चाहे स्त्री हो चाहे शूद्र हो—बालक हो चाहे बूढा हो यदि वह गुणी हो तो उसका गुण सर्वत्र अवश्य आदरणीय है

'केवल गुनी को गुन पूजत, नाहिं रूप अरु नाहिं वैस है"

(अंक ४ – श्लोक ११)

इनके ग्रन्थों से विदित होता है कि तब तक स्त्री शिक्षा पाप नहीं मानी गई थी और न पर्दे ही का प्रचार था। आजकल की कपट मिश्रित चुनाचुनी के ढग की मेहमानदारी न होते हुए भी लोगों का जीवन पवित्र था। ऐसे ही स्वभाव के कारण उन विविध लोकोत्तरचरितातिशय आकारानुभाव †गाम्भीर्य सभाव्यमान आर्य महापुरुषों को देखत ही लव जैसा उद्दण्ड वीर बालक मन्त्र-मुग्ध सा होगया था। कहीं जनक को सीता निर्वासन पर क्रोध आ भी गया तो वह दूध के झाग की तरह शीघ्र ठंडा होगया। इस नाटक में बालक भी आज कल जैसे दुर्बोध,लज्जाशील व डरपोक नहीं हैं, वे भी दर्प व सौजन्य का यथोचित बर्ताव करना जानते हैं आत्म-गौरव की यथोचित रक्षा करना ही उनका मुख्य उद्देश्य है।

लव और चन्द्रकेतु के मिलने का बहुत अच्छा वर्णन किया गया है। यह दोनो वीर युवा हैं जिनमें युद्ध का उत्साह भरा है परन्तु वे एक दूसरे के साथ वीरोचित सुशीलता और सम्मान दिखलाते हैं। यह ध्यान रहे कि यह नाटक यूरोप में वीरता की उन्नति (Chivalry) होने के कई शताब्दी पहिले लिखा गया था। भवभूति की सच्चे ब्राह्मणों में बडी श्रद्धा थी, उनका विश्वास था कि—

* (महावीर द्विवेदी) † चेहरे पर दिव्य तेज वाले।

प्रकार के गुण व दोष से (आजकल के समालोचकों की समझ में जैसा कुछ हो) अवश्य प्रयुक्त रहती थी। ऐसा संस्कार उनके हृदय में वंशपरम्परा से ही अंकुरित होता रहता था। उस समय की शिक्षा शैली ऐसा ही उपदेश देती थी।

जो लोग सती सीता के दुःख से कातर होकर राम को यह दोष लगाते हैं कि उन में मानसिक बल नहीं था क्योंकि ऐसी छोटी छोटी बातों में प्रजा को सन्तुष्ट और प्रसन्न करने के लिये उन्होंने इतनी उग्र उत्कण्ठा प्रकट की थी। ऐसा समझने वाले अपनी अनुदार आलोचना से महाराज मर्यादापुरुषोत्तम राम के अनुपम आत्म-त्याग के सौन्दर्य को नष्ट भ्रष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। राम स्वयं जानते थे कि सीता निर्दोष है और उन्होंने उस निरपराधिनी को देश निकाला देकर घोर घृणित कार्य किया है-उनके ही विलाप से यह सब विदित होता है और वह आत्म-ग्लानि की अन्तरानल से कितना कुढते थे यह पद पद पर प्रकट होता है। इन्होंने सीता निर्वासनजनित पाप का प्रायश्चित अपने विलापों से किया है। कवि ने तमसा के मुख से ठीक कहलाया है कि —

"उपाटै पूर्ण तड़ाग जबै भरे, जल निकासन तासु प्रतिक्रिया।
विपुल सोक दसा-मधिहू तथा, रुदन धीरज को सदुपाय है ॥"*

(३-२९)

अस्तु जब हम नृप-कर्त्तव्य पालन कसौटी पर राम के सीता निर्वासन-कार्य की परीक्षा करते हैं तो उनके अद्भुत आत्मत्याग और अनुपम वीर गम्भीर उदार भाव के अनन्त पारावार में उक्त भ्रमात्मक कलङ्क-कालिमा अनन्त बार घुल जाती है।

एक बात और भी ध्यान देनी है वह यह कि प्रजानुरञ्जन कार्यों

---

* Give sorrow words, the grief that does not speak,
Whispers the o'er fraught heart and bids it break
—Shakespeare

से राम का जी भरकर रोने का भी तो अवकाश न मिला। चाहे कैसे ही घोर शोक का समय हो राम ने कर्त्तव्यपालन को ही प्राधान्य दिया है। जब उन्होंने सुना कि यमुना-तट पर तप करने वाले तपस्वियों को लवणासुर ने सताया है तो राम सब रोना धोना भूलगये और उस असुर के वध का प्रबन्ध करने में जा लगे। फिर एक ब्राह्मण ने एक मरा लडका राजद्वार पर पटक कर ज्योंही दुहाई मचाई और आकाशवाणी हुई उसी समय राम ने अपने शोक को भूलकर शम्बूक के मारने के लिये प्रस्थान कर दिया। इन बातों से भली भाँति प्रकट है कि प्रजाहित के लिये राम अपने सुख दुःख की कुछ भी पर्वाह न करते थे।

राम का करुण क्रन्दन-कलाप इस बात का साक्षी है कि सीता को निकालने में राम की कितनी प्रवृत्ति थी, किस धर्मसंकट में फँस कर राम से यह काम बन पडा था। आधुनिक समाज-सुधारकों के शुष्क वाद विवाद तथा व्यर्थ तर्क वितर्क में पड कर देश-काल की परिवर्तित दशा को प्राचीन पूर्व स्थिति में ठेल कर छिद्रान्वेषण करना अपने प्रधान लक्ष्य से भटक जाना है। भवभूति के राम ने अपने जीवन में "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि" को चरितार्थ किया है। कवि-कल्पित उनका चित्र स्वाभाविक है। राम वीर हैं, पराक्रमी हैं, प्रजापालक हैं—लेकिन सब से पहले आदर्श पुरुष हैं। धीरोदात्त * नायक के सम्पूर्ण लक्षणों ने उनमें आश्रय पाया है। नेता × के सब गुण रामचन्द्र जी में

* महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ॥

× नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा ॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ॥

विद्यमान् हैं और इन्हीं नमूनों को सामने रखकर भवभूति ने राम का चरित्र चित्रण किया है। तथापि भवभूति वासन्ती के मुख से सीता निर्वासन के लिये राम पर कटु तथा नम्र सकेतों की विकट बौछार करता है। यह सब कुछ करते हुए भी विचारे भवभूति अपना कवि-कर्त्तव्य पालन करने में कहाँ तक सफल प्रयत्न हुए हैं, इसका निर्णय केवल विज्ञ पाठकों पर ही छोड़ा जाता है।

१०--प्रकृति-वर्णन--जिन किन्हीं वस्तुओं का वर्णन करना हो उनका साक्षात् अनुभव कवि के लिये अत्यावश्यक है। पहले तो बडे बडे कवियों में भी प्राय यह सामर्थ्य नहीं पाई जाती कि उनके वर्णन यथार्थ बन सकें अर्थात् उन पदार्थों के साक्षात्कार से जो कल्पना मन मे आती है वह केवल वर्णन पढने से मन में कदापि आविर्भूत नहीं होती। जब इन वर्णनो की ही ऐसी दशा है तो इनकी प्रतिकृति में यथार्थता और रस कहाँ तक रह सकते हैं इसका विचार पाठक स्वय कर सकते हैं (इस प्रकार की त्रुटि से भवभूति के नाटक अधिकाश में दूषित नहीं हैं। केवल इनका ही सृष्टि विभव वर्णन आधुनिक अँगरेज कवियों की सजावट के ढग पर है) इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि सस्कृत के और कवियों ने सृष्टि पदार्थों का वर्णन लिखा ही नहीं किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उन कवियों का ढग निराला है, उनके वर्णन में अत्यन्त प्रसिद्ध एव निश्चित बातें कभी छूट ही नहीं सकतीं। जिन्हें पढ कर यह शका स्वभावत उत्पन्न होती है कि उनमें से बहुतेरों ने अपने वर्णित प्रकृति-दृश्यों का स्वय अनुभव कदापि नहीं किया परन्तु प्राचीन ग्रन्थो को पढ कर वैसा लिख दिया है। किन्तु भवभूति ऐसे कवियों में न थे। उपमा और प्राकृतिक वर्णन यद्यपि कालिदास का सबसे अनूठा है किन्तु वर्णन में उस वस्तु का रूप आँख के सामने खडा कर देना भवभूति ही जानते थे। उत्तर राम-चरित में आश्रम, तपोवन, पर्वत गुल्म,

लता आदि का ऐसा अद्भुत वर्णन किया गया है जैसे यह सब पढ़ने वाले के सामने ही हैं। मालती माधव में श्मशान का वर्णन पढ़ने में रोमाञ्च खड़े होजाते हैं। उन्होंने जो स्थान स्थान पर प्रकृति के उत्तमोत्तम वर्णन लिखे हे उन्हे कवि-कपोल कल्पित व अयथार्थ कहना युक्ति युक्त नहीं है। इससे यही प्रकट होता है कि प्रकृति देवी के भाँति भाँति के मनोहर दृश्यों को अवलोकन करने का भवभूति को प्रकृतिजात परमोत्साह था। दण्डकारण्य, जनस्थान, पञ्चवटी, गोदावरी नदी के स्वच्छ स्वाभाविक वर्णन इसके साक्षी हैं। बिना अनुभव के यह कोई कैसे वर्णन कर सकते हैं। (चि० प०)

उनके ग्रन्थ

इनके बनाए तीन नाटक हैं—(१) मालतीमाधव*, (२) महावीर-चरित, (३) उत्तर राम चरित। साहित्य महोदधि के इन तीनो रत्नों का जिसने आनन्द नहीं लिया उसके लिये काव्य का पठन पाठन व्यर्थ ही है। कवि भवभूति की सरस्वती मानो अपनी तीन धाराओं मे तीन नाटकों के आकार में बही है। कुरुक्षेत्र के समीप सरस्वती एक ही धारा में थोड़ी दूर बह कर लोप होगई है किन्तु भवभूति की प्रतिभा के उद्गार मे वह अविच्छिन्न त्रि स्रोत हो बहती ही चली गई है। मालती माधव मे शृङ्गार रस के रूप में महावीर चरित में वीरता का रूप धर और उत्तर राम चरित मे करुणारस के प्रवाह में इस तरह यह समस्त विदग्ध मण्डली को तीन प्रकार के रस से आप्यायित और आप्लावित कर रही है। साहित्यदर्पणकार "काव्यस्यात्मा ध्वनि" ध्वनि को ही काव्य की आत्मा मानते हैं। यह ध्वनि भवभूति की कविता पद पद पर टपकी पड़ती है यही कारण है कि काव्यप्रकाश

* पं० सत्यनारायण कविरत्न कृत [illegible] हिन्दी [illegible] रत्नाश्रम आगरा से मिल सकता है।

सरस्वतीकण्ठाभरण वाग्भट्टालंकार आदि साहित्य के प्राचीन ग्रन्थों और कुवलयानन्द, चित्रमीमांसा, साहित्यदर्पण आदि नवीन ग्रन्थों में भवभूति के श्लोक बहुधा उदाहरण की भाँति उद्धृत किये गये हैं।

जैसा प्रसादगुण कालिदास के काव्य में भरा है वैसी ही ओजगुण पूर्ण ध्वन्यात्मक नई नई उक्ति-युक्ति भवभूति की कविता में, अधिकतर उत्तर-राम-चरित में हैं। इसकी विचित्र रचना से मुग्ध होकर कोई कोई सहृदय साहित्य मर्मज्ञ उन्हें कालिदास से बढ़ा चढ़ा मानते हैं। "उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते"*

उनका यह कहना अधिकांश में बहुत ठीक है। इनका शृंगार तथा वीर रस वर्णन तो किसी भी संस्कृत कवि से कम नहीं है और करुणारस के वर्णन में तो भवभूति संस्कृत के सब कवियों से बढ़ गए हैं, यह बात प्राचीन काल से ही चली आती है। इनकी रचना में जो ओजस्विता और भाव की सचाई है उसका पता तो उन्हीं को लगता है जो मूल में इनकी कविताओं को पढ़ते हैं। मधुर छन्द गूथने में भवभूति अद्वितीय हैं। जिस अर्थ गौरव भाव का समयोचित सत्यता तथा भाषा के मनोमुग्धकारी माधुर्य के साथ यह कवीन्दु हार्दिक भाव का आदर्श सारगर्भित अक्षरावली में रचते हैं कदाचित् उसे देख कर इनके प्रत्येक पद्य को सचित्र भाव कहने से अत्युक्ति नहीं होगी। उन्हें पढ़ने से इनकी कवित्वशक्ति का, चमत्कारिणी प्रतिभा का और असली कविता का कुछ पता चल सकता है। उनकी वाणी की किसी ही प्रकार से परीक्षा कीजिये, साहित्य की कैसी ही कसौटी पर कसिये यह पूर्णतया उच्चश्रेणी की है और उसके पठन पाठन से लोकोत्तर आनन्द अवश्य होता है। इसी कारण भवभूति की गणना विद्वानों ने महाकवियों में की है।

---

* प० दाक्षदास-ह

भवभूति और कालिदास

संस्कृत के परमोत्कृष्ट कविवृन्द में कालिदास और भवभूति ही ऐसे हैं जिनका गुणगान आज तक अनविछिन्नरूप से चला आता है। सर्व सम्मति से दोनों ही आदरणीय तथा पूज्य हैं। इन दोनों महाकवि-कृत रचनाओं की परस्पर तुलना करके यथार्थ तारतम्य निकालना ज़रा टेढ़ी खीर है। सब की रुचि एक ही सी नहीं होती, कोई कालिदास को उत्तम मानते हैं और कोई भवभूति को। किन्तु ध्यानपूर्वक देखा जाय तो अपने अपने ढंग के दोनों ही निराले हैं, दोनों ही प्रथम श्रेणी के कवि हैं, इन दोनों की जैसे उत्कृष्ट प्रतिभा प्रकृतिजात थी, वैसे ही भाषा भी अभिप्रायानुसारिणी थी, दोनों की कल्पना, तथा पद रचना में प्रौढ़ता और सरसता आदि जो महाकवियों के गुण हैं पूर्णरूप से पाये जाते हैं। यदि कालिदास का कल्पना पर अधिकार है तो भवभूति भी मानव मनोधर्म के भिन्न भिन्न स्वरूप को चित्रित करने में सिद्धहस्त हैं।

एक श्रृंगार रस का निदर्शन विशद प्रकार से कराते हैं तो दूसरे वीर तथा करुणारस की प्रतिमूर्ति सामने खड़ी कर देते हैं और सरस श्रृंगार रस को चित्रांकित करने में अपने प्रतियोगी से किसी भाँति कम नहीं हैं। कालिदास के श्रृंगार का उद्भव कहीं कहीं पर विशुद्ध प्रेम से नहीं किंतु बहुतांश में कामवासना से ही प्रणोदित कहा जाता है किन्तु भवभूति का श्रृंगार सहज तथा पवित्र भावनात्मक है। कालिदास की वर्णन शैली सरल, स्वाभाविक, मृदुल, मनोहर है और भवभूति की रचना प्रणाली कृत्रिम, श्रमशिल्पित, प्रौढ, समयानुकूल तथा लम्बे लम्बे प्रशस्त प्रभावशाली समासों से गुम्फित है। भवभूति के नाट्यपात्र सच्चे और रूपांतर मात्र हैं और उनके नाटक उस समय के सामाजिक भाव, रीति-नीति, आचार विचार और पारस्परिक

सरस्वतीकण्ठाभरण वाग्भट्टालंकार आदि साहित्य के प्राचीन ग्रन्थों और कुवलयानन्द, चित्रमीमांसा, साहित्यदर्पण आदि नवीन ग्रन्थों में भवभूति के श्लोक बहुधा उदाहरण की भाँति उद्धृत किये गये हैं।

जैसा प्रसादगुण कालिदास के काव्य में भरा है वैसी ही ओजगुण पूर्ण ध्वन्यात्मक नई नई उक्ति-युक्ति भवभूति की कविता में, अधिकतर उत्तर-राम-चरित में हैं। इसकी विचित्र रचना से मुग्ध होकर कोई कोई सहृदय साहित्य मर्मज्ञ उन्हें कालिदास से बढा चढा मानते हैं। "उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते"*

उनका यह कहना अधिकांश में बहुत ठीक है। इनका शृंगार तथा वीर रस वर्णन तो किसी भी संस्कृत कवि से कम नहीं है और करुणारस के वर्णन में तो भवभूति संस्कृत के सब कवियों से बढ गए हैं, यह बात प्राचीन काल से ही चली आती है। इनकी रचना में जो ओजस्विता और भाव की सचाई है उसका पता तो उन्हीं को लगता है जो मूल में इनकी कविताओं को पढते हैं। मधुर छंद गूंथने में भवभूति अद्वितीय हैं। जिस अर्थ गौरव भाव का समयोचित सत्यता तथा भाषा के मनोमुग्धकारी माधुर्य के साथ यह कवीन्दु हार्दिक भाव का आदर्श सारगर्भित अक्षरावली में खींचते हैं कदाचित् उसे देख कर इनके प्रत्येक पद्य को सचित्र भाव कहने से अत्युक्ति नहीं होगी। उन्हें पढने से इनकी कवित्वशक्ति का, चमत्कारिणी प्रतिभा का और असली कविता का कुछ पता चल सकता है। उनकी वाणी की किसी ही प्रकार से परीक्षा कीजिये, साहित्य की कैसी ही कसौटी पर कसिये वह पूर्णतया उच्चश्रेणी की है और उसके पठन पाठन से लोकोत्तर आनन्द अवश्य होता है। इसी कारण भवभूति की गणना विद्वानों ने महाकवियों में की है।

* प० दाम्बृष्टन८६

भवभूति और कालिदास

संस्कृत के परमोत्कृष्ट कविवृन्द में कालिदास और भवभूति ही ऐसे हैं जिनका गुणगान आज तक अनवच्छिन्नरूप से चला आता है। सर्व सम्मति से दोनो ही आदरणीय तथा पूज्य हैं। इन दोनों महाकवि-कृत रचनाओं की परस्पर तुलना करके यथार्थ तारतम्य निकालना जरा टेढी खीर है। सब की रुचि एक ही सी नहीं होती, कोई कालिदास को उत्तम मानते हैं और कोई भवभूति को। किन्तु ध्यानपूर्वक देखा जाय तो अपने अपने ढग के दोनो ही निराले हैं, दोनों ही प्रथम श्रेणी के कवि हैं, इन दोनो की जैसे उत्कृष्ट प्रतिभा प्रकृतिजात थी, वैसे ही भाषा भी अभिप्रायानुसारिणी थी, दोनों की कल्पना, तथा पद रचना मे प्रौढता और सरसता आदि जो महाकवियों के गुण हैं पूर्णरूप से पाये जाते हैं। यदि कालिदास का कल्पना पर अधिकार है तो भवभूति भी मानव मनोधर्म के भिन्न भिन्न स्वरूप को चित्रित करने मे सिद्धहस्त हैं।

एक शृगार रस का निदर्शन विशद प्रकार से कराते हैं तो दूसरे वीर तथा करुणरस की प्रतिमूर्त्ति सामने खड़ी कर देते हैं और सरस शृ गार रस को चित्राकित करने में अपने प्रतियोगी से किसी भाँति कम नहीं हैं। कालिदास के शृगार का उद्भव कहीं कहीं पर विशुद्ध प्रेम से नहीं किंतु बहुताश में कामवासना से ही प्रणोदित कहा जाता है किन्तु भवभूति का शृगार सहज तथा पवित्र भावनात्मक है। कालिदास की वर्णन शैली सरल, स्वाभाविक, मृदुल, मनोहर है और भवभूति की रचना प्रणाली कृत्रिम, श्रमशिल्पित, प्रौढ, समयानुकूल तथा लम्बे लम्बे प्रशस्त प्रभावशाली समासों से गुम्फित है। भवभूति के नाट्यपात्र सब और रूपातर मात्र हैं और उनके नाटक उस समय के सामाजिक भाव, रीति-नीति, आचार विचार और पारस्परिक

व्यवहार के जैसे के तैसे प्रतिविम्ब है। उनके द्वारा ही तत्कालीन हिन्दू सामाजिक अभिरुचि, भाव और सभ्यता का सच्चा पता चलता है। कालिदास के पश्चात् होने से भवभूति को उनके भाव तथा विचारों का अनिवार्य अनुकरण करना पडा है, किन्तु वह अनुकरण भी कहीं कहीं बहुत बढिया हुआ है। जिस बात को कालिदास व्यंगार्थ में प्रकट करते हैं वही भवभूति द्वारा वाच्यार्थ में कथन की जाती है। कालिदास पर बहुधा शास्त्रीय नियमों का अंकुश नहीं है किन्तु भवभूति पूर्णतया यथावत् शास्त्रीय नियमों का पालन करते हैं। उनके अतिथियों का स्वागत मधुपर्क बिना होता ही नहीं—कालिदास के नाटकों में विदूषक महाराज मिलेंगे जिनकी उपहासजनक बातों से गाम्भीर्य भाव को भागना पडता है, किन्तु भवभूति के नाटकों में विदूषक का नाम भी नहीं + प्रत्युत दुर्मुख को भी कर्तव्यपरायण होना पडता है। वास्तविक घटनाक्रम के गाम्भीर्य की रक्षा के निमित्त कदाचित् भवभूति ने ऐसा किया है। कालिदास के कोई भी नायक नायिका, दाम्पत्य विज्ञान के उज्ज्वल उदाहरण आदर्श पति राम और आदर्श पत्नी सीता के जोड के अल्प काल के लिये भी नहीं कहे जा सकते।

उत्तर-राम चरित और शकुन्तला नाटक

यह दोनों नाटक आपस में बहुत मिलते हैं, दोनों ही संस्कृत साहित्याकाश के दो चन्द्र हैं, दोनों ही में नायकों ने अपनी गर्भिणी स्त्री का परित्याग किया है केवल अन्तर इतना ही है कि एक ने तो शापजनित भ्रम से और दूसरे ने लोकमत के आदर से ऐसा किया है। दोनों नायकों की स्त्रियों को आगे या पीछे महर्षियों का आश्रय प्राप्त हुआ है दोनों ही नायक अपने आपे में आकर अपनी ? पत्नी के

+ सम्भवतः भवभूति के समय । राजकीय गाम्भीर्य के परस्पर विचार के कारण उपहासजनक बातों को छोड लोग प्राय गम्भीर रहा करते होंगे।

लिये विलाप करते हैं, अन्तर केवल इतना ही है कि दुष्यन्त का मनोरंजन कभी कभी विदूषक द्वारा हो जाया करता है और बिचारे राम को "स्वगृ कृत्वा त्याग विलपनविनोदोऽप्यसुलभः" हो रहा है। ऐसी दशा में राम का पुटपाक के समान करुणारस गाम्भीर्य युक्त हो गया है, मनोविनोद की अपेक्षा राम का शोक सीता की सहेली वासन्ती के मृदु तथा कटु उपालम्भों से और भी बढ़ गया है। परित्याग के समय शकुन्तला दुष्यन्त पर कोप करती है, परन्तु सीता ने कहीं भी राम के लिये कटु वचन का प्रयोग नहीं किया, स्त्री के आत्मत्याग की सीमा इस चित्रण में अधिक नहीं हो सकती,—चिरस्थायी प्रेम का इससे बढ कर वर्णन न तो किया जा सकता है और न कहीं किया गया है—सुशीलसद् पति प्रेममयी क्षमा करने वाली सीता से बढ कर उत्तम, पवित्र, देवतुल्य चित्र मनुष्य की कल्पना नहीं खींच सकती है। अंत में दुष्यन्त और राम दोनों ही साक्षात् भाव से अपने पुत्रों को मिलकर मुग्ध हो जाते हैं और दोनों ही नाटकों के नायक महर्षियों के आश्रम में उनकी कृपा से अपनी अपनी स्त्री पा लेते हैं। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि उधर तो महाभारत के एक रूपक को लेकर कालिदास ने शकुन्तला नाटक की रचना कर ससार को मोहित कर दिया, इधर कालिदास के पश्चात् कालीन भवभूति ने रामायण से उसी प्रकार का एक रूपक ले उत्तर राम चरित को रच उक्त कवि की शकुन्तला का जोड उपस्थित कर दिया और इस भाँति प्रसिद्धि प्राप्त की। अस्तु यदि भवभूति का लक्ष्य उत्तर राम चरित बनाते समय शकुन्तला रहा हो तो असभव नहीं है।

मङ्गल

नाटक के आरम्भ में एक ब्राह्मण आकर सभा को आशीर्वाद देता है, इस आशीर्वाद को नान्दी कहते हैं। फिर नाटक खेलने

वालों का मुखिया जो सूत्रधार कहलाता है सभा के सामने कुछ कह कर कहता है कि आज अमुक नाटक का खेल किया जायगा इस बातचीत को प्रस्तावना कहते हैं। नाटक के भागों को अंक कहते हैं और जो कोई अधिक प्रसंग किसी अंक के आदि में आता है वह विष्कम्भक अथवा गर्भांक कहलाता है। नाटक के पढने वालों की सुगमता के लिये कुछ बातें कोष्टकों में लिखी जाती है, जैसे—

(नेपथ्य में)—इसका मतलब यह है कि यह बात कहीं परदे के पीछे से सुनाई पडती है जिसका कहने वाला रंगभूमि पर उपस्थित नहीं है-इस चिह्न का प्रयोग उस समय होता है जब नाटककार किसी बात को बिना रंगभूमि पर खेले दर्शकों को ज्ञात करा देना चाहता है।

(आप ही आप) अथवा (अलग) का अर्थ है कि कहने वाला इस प्रकार बोलता है मानो दर्शक तो सुन रहे हैं परन्तु दूसरे नाटक खेलने वाले नहीं सुन रहे हैं।

जहाँ लिखा है कि अमुक का प्रवेश, अथवा अमुक आता है, जाता है इत्यादि इससे जानना चाहिये कि वह पात्र रंगभूमि पर आया अथवा वहाँ से नेपथ्य अर्थात् परदे के पीछे चला गया।

धांधूपुर, आगरा। }
७-९-१३ }

—सत्यनारायण।

॥ श्री हरि ॥

※ उत्तर-राम-चरित नाटक ※



[नान्दी]

बन्दौं श्रीमद्वाल्मीकि कवि मग-दरसावन।
रामचरित नित नव रसाल पिक कृत जग पावन ॥
पुनि याचत मनहरनि रसिक-नर-हृदय-विलासिनि।
अरथ धरनि जय करनि विविध विज्ञान निकासिनि ॥
श्री शब्द-मूर्ति धर महा-श्री जो मंजुल माया लसै।
अस अमृत-बानी षटपदी नित सत मुख अम्बुज बसै ॥१॥

[सूत्रधार का प्रवेश]

सूत्र०—बस, अधिक विस्तार का काम नहीं आज भगवान कालप्रियनाथ की यात्रा के शुभ उत्सव पर सर्व सज्जन महोदयों को विदित हो कि कश्यपकुल उजागर, अखिल विद्या सागर, जननि जातुकर्णी के पवित्र गर्भोत्पन्न, श्रीकण्ठ पद-सम्पुत जिनका नाम श्री भवभूति प्रसिद्ध है—

वचन के रस जासु सरस्वती,
करति काज मनो निज भामिनी।

मुदित सुलत तान कविन्द्र के,
विमल उत्तर-राम-चरित्र को ॥२॥

[कुछ ठहरकर] अच्छा, तो, अब मैं कार्यवश अयोध्यावासी और महाराज श्री रामचन्द्र के समय का बना जाता हूँ । [चारों ओर देखकर] अरे, क्या आज कल पौलस्त्य-कुल-धूमकेतु श्री राघवेन्द्र के राज्याभिषेक का समय है ? इन दिनों तो निरन्तर आनन्द-मंगल और गाने बजाने की धूम-धाम मची रहनी चाहिये, फिर किस कारण से विरुदावली गाते हुए प्रफुल्लित चारण और भाट लोगों से चौराहे शून्य दिखलाई पड रहे हैं ।

नट—[हँसकर] भाई, बात यह है कि महाराज ने लंका के युद्ध में सहाय करने वाले वन्दरों, राक्षसों तथा अनेक देशों के ब्रह्मर्षि और राजर्षि लोगों को—जो राज्याभिषेक के सम्मान के लिये आये थे—यहाँ से विदा कर दिया है, उन्हीं के सत्कारार्थ इतने दिनों तक उत्सव रहा था ।

सूत्र०—अच्छा, ठीक !

नट—और देखो—

श्री वशिष्ठ ऋषि पूर्ण सम्मानित सब महरानी ।
कौसिल्यादिक मातु-प्रेम पूरित मुद-सानी ।
गुरु-तिय के सँग गईं सुतापति सदन सुहावन ।
निरखन हेत पुनीत जज्ञ-उच्छव मनभावन ॥३॥

सूत्र०—अजी, मैं विदेशी हूँ, इसीलिये पूछता हूँ कि ये सुतापति कौन हैं ।

नट—शान्ता जो सुन्दर सुता, दसरथ का गुन-माल।
दयी लोमपद नाहिं सुत्य, गोद धरन भुअपाल ॥२॥

उसका विवाह विभाण्डक के पुत्र शृंगीऋषि के साथ हुआ, जो आज कल बारह वर्ष में पूर्ण होने वाला यज्ञ कर रहे हैं, इसी कारण पूर्ण गर्भवती जानकी जी को छोड़ सब बड़े बूढ़े वहाँ गये हैं।

सूत्र०—इससे हमको क्या? हम तो चारण हैं, चलो राजद्वार पर चलें और निज वंशपरम्परानुसार राजा की विरुदावलि बखानें।

नट—तो वहाँ के लिये कोई बढ़िया स्तुति सोच लीजिये जिसमें किसी प्रकार का दोष न हो।

सूत्र०—सुनो भाई!

चूक चाकरी में कबहु, करनी चाहिय नाहिं।
सब प्रकार निरदोष कहु, को पदार्थ जग माहिं॥
कुटिल मनुज सों राहि सुकृत, भला कौन निस्सङ्क।
सदनुनितामनितान में जो नित लसत कलङ्क॥५॥

नट—अजी, ऐसों को तो अति कुटिल कहना चाहिये क्यों कि—

सती सियहु को दोस दें, जन जब करत अनीति।
अपर तियन की जगत में, को करिहै परतीति॥
करन निन्दा मूल तिन, राछस घर को बास।
अनल-परीच्छहु में तनक, नाहिं लोगनि बिसवास॥६॥

मोदित सुनत तास नरेन्द्र कै,
विमल उत्तर-राम-चरित्र कों ॥२॥

[कुछ ठहरकर] अच्छा, तो, अब मैं कार्यवश अयोध्या-नामी और महाराज श्री रामचन्द्र के समय का बना जाता हूँ। [चारों ओर देखकर] अरे, क्या आज कल पौलस्त्य-कुल-धूमकेतु श्री राघवेन्द्र के राज्याभिषेक का समय है? इन दिनो तो निरन्तर आनन्द-मगल और गाने बजाने की धूम-धाम मची रहनी चाहिये, फिर किस कारण से विरुदावली गाते हुए प्रफुल्लित चारण और भाट लोगो से चौराहे शून्य दिखलाई पड रहे हैं।

नट—[आकर] भाई बात यह है कि महाराज ने लंका के युद्ध में सहाय करने वाले बन्दरो, राक्षसो तथा अनेक देशों के ब्रह्मर्षि और राजर्षि लोगो को—जो राज्याभिषेक के सम्मान के लिये आये थे—यहाँ से विदा कर दिया है, उन्हीं के सत्कारार्थ इतने दिनो तक उत्सव रहा था।

सूत्र०—अच्छा, ठीक!

नट—और देखो—

श्री वशिष्ठ सों पूर्न सत्कृत सब महरानी।
कौसिल्यादिक मातु-प्रेम-पूरित मद-सानी।
गुरु-तिय के सँग गई सुतापति सदन सुहावन।
निरखन हेतु पुनीत जग्य-उच्छव मनभावन ॥३॥

सूत०—अजी, मैं विदेशी हूँ, इसीलिये पूछता हूँ कि ये सुतापति कौन हैं!

अंक १

(स्थान—राजभवन)

[राम और सीता आसन पर बैठे दिखलाई पड़ते हैं]

राम—देवी, धीरज धरो, इतना सोच क्यों करती हो। आपके पूज्य पिता आप ही हम लोगों के बहुकालव्यापी विरह को नहीं सह सकते, किन्तु क्या करें—

नित्यकर्म को नियम कठिन जो अति ही भारी।
स्वतन्त्रता द्विज गृही मात्र की हरतु है प्यारी।
निघन तनक सों परत घने दोसनि उपजावत।
या चिन्ता सों ग्रसित कारमिकु चैन न पावत ॥८॥

सीता—आर्य पुत्र, मैं इसे अच्छी तरह जानती हूँ, किन्तु अपने लोगों से बिछुड़ कर कुछ दुःख होता ही है।

राम—प्यारी, आपने जो कहा यह ठीक है। हृदय विदीर्ण करने वाली ससारी माया ऐसी ही प्रबल है, इसी कारण इससे भयभीत हो बुद्धिमान जन सब कामनाओं को छोड़-छाड़ कहीं एकान्त वन में जाकर विश्राम करते हैं।

[कंचुकी का प्रवेश]

कं०—भैया रामचन्द्र, [इतना कहके दाँतों महाराज।

सूत्र०--जो कहीं उडते उडते इस चर्चा की महाराज के कान में भनक भी पड गयी तो वडा ही अनर्थ हो जायगा।

नट--ऋषि और देवता सब भला करेंगे। [इधर उधर घूम कर] क्यों जी, इस समय महाराज कहाँ है? [कुछ सुनकर] सुनने में तो यह आया है कि—

रघुनन्दन क अभिनन्दन कों,
यहँ आइ पिताइ के घास सुसारे।
अभिसेक के उच्छव कों करिकें,
मिथिलापुर कों मिथलेस सिघारे।
यहि कारन भारी उदास सिये,
समझावन कों कहि वैन पियारे।
तजिकें घरमासन, प्रेम भर,
नृप रामजू मन्दिर कों पग धारे ॥७॥

[दोनों जाते है]

इति प्रस्तावना



अंक १

(स्थान—राजभवन)

[राम और सीता आसन पर बैठे दिखलाई पड़ते हैं]

राम—देवी, धीरज धरो, इतना सोच क्यों करती हो ! आपके पूज्य पिता आप ही हम लोगों के बहुकालव्यापी विरह को नहीं सह सकते, किन्तु क्या करें—

नित्यकर्म को नियम कठिन जो अति ही भारी ।
स्वतन्त्रता द्विज गृही मात्र की हरत पियारी ।
विघन तनक सो परत घन दोसनि उपजावत ।
या चिन्ता सो भ्रमित कारमिक चैन न पावत ॥८॥

सीता—आर्यपुत्र, मैं इसे अच्छी तरह जानती हूँ, किन्तु अपने लोगों से बिछुड़ कर कुछ दुःख होता ही है ।

राम—प्यारी, आपने जो कहा वह ठीक है । हृदय विदीर्ण करने वाली संसारी माया ऐसी ही प्रबल है, इसी कारण इससे भयभीत हो बुद्धिमान जन सब कामनाओं को छोड़ छोड़ कहीं एकान्त वन में जाकर विश्राम करते हैं ।

[कंचुकी का प्रवेश]

कं०—भैया रामचन्द्र, [इतना कहकर दाँतों के नीचे जीभ काट कर] महाराज !

सूत्र०--जो कहीं उडते उडते इस चर्चा को महाराज के कान में भनक भी पड गयी तो बडा ही अनर्थ हो जायगा।

नट--ऋषि और देवता सब भला करेंगे। [इधर उधर घूम कर] क्यों जी, इस समय महाराज कहाँ हैं? [कुछ सुनकर] सुनने में तो यह आया है कि—

रघुनन्दन के अभिनन्दन कों,
यहँ आइ नितोइ के द्यौस गुजारे।
अभिसेक के उच्छव कों करिकें,
मिथिलापुर कों मिथलेस सिधारे।
यहि कारन भारी उदास सिये,
समझावन कों कहि बैन पियारे।
तजिकें धरमासन, प्रेम भरे,
नृप रामजू मन्दिर कों पगु धारे ॥७॥

[दोनों जाते हैं]

इति प्रस्तावना



अंक १

(स्थान—राजभवन)

[राम और सीता आसन पर बैठे दिखलाई पड़ते हैं]

राम—देवी, धीरज धरो, इतना सोच क्यों करती हो ! आपके पूज्य पिता आप ही हम लोगों के बहुकालव्यापी विरह को नहीं सह सकते, किन्तु क्या करें—

नित्यकर्म का नियम कठिन जो अति ही भारी।
स्वतन्त्रता द्विज गृही मात्र की हरतु है प्यारी।
निघन तनऊ सो परत घने दोसनि उपजावत।
या चिन्ता सों ग्रसित कारमिक चैन न पावत ॥८॥

सीता—आर्यपुत्र, मैं इसे अच्छी तरह जानती हूँ, किन्तु अपने लोगों से बिछुड़ कर कुछ दुःख होता ही है।

राम—प्यारी, आपने जो कहा वह ठीक है। हृदय विदीर्ण वाली ससारी माया ऐसी ही प्रबल है, इसी इससे भयभीत हो बुद्धिमान जन सब कामनाओं को छोड़ कहीं एकान्त वन में जाकर विश्राम करते हैं।

[कञ्चुकी का प्रवेश]

क०—भैया रामचन्द्र, [इतना कहके दाँतों के नीचे जीभ काट] महाराज !

राम—[मुसमादर] आर्य, तुम पिताजी के पुराने सेवक हो तुम्हारे मुख से 'भैया रामचन्द्र' ही सम्बोधन अच्छा लगता है, इसलिये तुमको जैसा अभ्यास पड़ रहा है वैसा ही कहा करो।

क—महाराज, शृंगीऋषि के यहाँ से अष्टावक्र जी आये हैं।

सीता—तो उन्हें क्यों रोक रक्खा है।

राम—शीघ्र लेआओ।

[कञ्चुकी जाता है]

[अष्टावक्र का प्रवेश]

अ०—आपका कल्याण हो?

राम—भगवन् मैं आपको प्रणाम करता हूँ, यहाँ विराजिये।

सीता—मैं भी प्रणाम करती हूँ, कहिये जामातृ के सहित हमारी सास और शान्ता देवी कुशल से तो हैं?

राम—बतलाइये, हमारे बहनोई सोमरस के पान करने वाले शृंगीऋषिजी का यज्ञ तो निर्विघ्न हुआ चला जाता है, वह और बहिन शान्ता आनन्द से तो हैं?

सीता—कभी हमारा भी स्मरण करती हैं?

अ०—[बैठकर] क्यों नहीं? देवी, कुलगुरु भगवान वशिष्ठ जी ने आपको कहला भेजा है कि—

विश्व भरनि वसुमतीदेवि की तुम हो जाई।
जगत-जनक सम जनक सुभग तुव जनक सुहाई॥

जिन कुल सविता बस-प्रवरतक, हम आचारी।
तिन राजनि की बधू नन्दिनी तुम सुकुमारी ॥६॥

इस कारण और क्या आशिष दें, बस भगवान तुम्हें वीर-जननी बनावे, यही हमारी आन्तरिक कामना है।

राम—इसके लिये हम अत्यन्त अनुगृहीत हैं, क्योंकि—

निराखे अर्थ कह निज बैन का
सकल लौकिक साधु बनाइके।
विमल मानस आदि ऋषीनु के
बचन को अनुधावत अर्थ है ॥१०॥

अ०—और भगवती अरुन्धती, देवी शान्ता, महारानी माताओं ने बारम्बार यह कहला भेजा है कि आजकल गर्भिणी सीता का मन जिस किसी वस्तु पर चले वह अवश्य ही उपस्थित की जाय, उसमें कदापि देर न करना।

राम—जो कहती हैं, सो सब किया जाता है।

अ०—तुम्हारे ननदोई और माताओं ने यह कहला भेजा है कि बेटी, तू पूरे दिनों से है इसी कारण तुझे हम अपने साथ नहीं लाये, वत्स रामचन्द्र को भी तेरा जी बहलाने के लिये वहीं छोड़ दिया है, इसलिये हे आयुष्मती! लाल से जब तेरी गोद भरी पूरी होगी तभी तुझ से मिलेंगे।

राम—[हर्ष और लाज से मुसक्राकर] ऐसा ही हो, कहिये भगवान वशिष्ठजी की कुछ मेरे लिये भी आज्ञा है?

अ०—उसे भी सुनिये—

ऋषि शृङ्ग के मख में यहाँ, लागे सबै हम आज।
है बालमति अब ही तिहारी, राज को नव काज॥
तुव धर्म नित्य प्रजानुरंजन निज प्रमाद विहाइ।
तज्जनित जस धन प्रचुर ही, रघुवंस की प्रभुताइ॥११॥

राम—भगवान मैत्रावरुणि की जो आज्ञा!

मोह दया, सुख, सम्पदा, जनक सुता बरु होहि।
प्रजा हेत तिनहूँ तजत विथा न व्यापहि मोहि॥१२॥

सीता—आर्य पुत्र, इसी लिये आप रघुकुल धुरन्धर कहलाते हैं।

राम—कोई है? अष्टावक्र जी को लेजाकर विश्राम कराओ।

अ०—[उठकर और घूमकर] अहा! यह तो कुमार लक्ष्मण आरहे हैं। [जाता है]

[लक्ष्मण का प्रवेश]

ल०—महाराज की जय हो, उस चित्रकार ने, जैसे कि हमने कहा था वैसे ही आप के चरित्र-चित्र उन दीवारो पर चित्रित किये हैं, उन्हे चलकर देख लीजिये।

राम—[आपही] उदास जानकी को प्रसन्न करना कुँवर खूब जानते हैं, [प्रगट] अच्छा, तो वह कहाँ तक बनगया है?

ल०—महारानी की अग्निशुद्धि तक।

राम—हैं हैं, ऐसा मत कहो!

अति पुनीत सिया निज जन्म सों,
तिहि भला पुनि पावन का करै।

लहि सकै कहु अन्य पदार्थ सों,
अनल तीरथ तोय विशुद्धता ॥१३॥

हे यज्ञभूमि से उत्पन्न हुई देवी! क्षमा करना, यह तो जन्म भर का कलंक तुम्हारे सिर हो चुका, तुम्हारी पवित्रता के विषय में मुझे रत्ती भर भी संशय न था, परन्तु—

कुल-कीरति रूप चहें धन जे,
ते महीप प्रजा को करैं मनभावत।
यहि सों मम नैन कढे जो अभाग,
नहीं तुव जोग, अबै लो सतावत।
निज पुण्य सुगन्धित कों जग माहि,
सुभावहि सों सब सीस चढावत।
याते के निरमोही न कोऊ जना,
तिन को दुःख पाइनु के तर दावन ॥१४॥

सीता—आर्यपुत्र इन बातों को जाने दीजिये, होना था सो होगया आइये अब आप भी चित्र को देखें।

[सब जाते हैं]

स्थान राज-मन्दिर, चित्रशाला

[राम लक्ष्मण सीता आते हैं]

लक्ष्मण - यहाँ तो हैं चित्र।

सीता—[देख कर] देखो जी, ये कौन हैं जो ऊपर पास पास खडे हुए आर्यपुत्र की प्रार्थना सी कर रहे हैं?

ल०—महारानी, ये मंत्र सहित जृम्भकास्त्र हैं, ये भगवान कृशाश्व मुनि से विश्वामित्र जी को मिले और उन्होंने ताडका के वध करने के समय में महाराज को दे दिये हैं।

राम—प्यारी, इन दिव्यास्त्रों को प्रणाम करो।

दोहा

वेद, विप्र रच्छा निमित, विधि आदिक रिषि वृन्द।
कियो सहस्राधिक वरस लौं, तप अति कठिन अमन्द॥
अपनो ही तप तेज बल, परम प्रभासित स्वच्छ।
इन अस्त्रनि के रूप में, तिन देख्यो प्रत्यच्छ॥१५॥

सीता—अच्छा मैं इनको प्रणाम करती हूँ।

राम—अब से ये सर्वथा तुम्हारी सतान की सेवा मे रहेंगे।

सीता—मुझ पर बड़ी कृपा हुई।

ल०—यह मिथिलापुरी का दृश्य है।

सीता—अहा! यह तो आर्यपुत्र का चित्र कढा हुआ है। काकपक्षों मे श्रीमुख-मंडल की छवि और भी अनोखी हो गई है, प्रफुल्ल नवल नील कमल सा श्याम इनका सुन्दर सुकुमार पुष्ट शरीर कैसा शोभाभिराम है, वह देखो, पिता जी बड़े आश्चर्य के साथ, सहज ही में शंकर का शरासन तोड़ने वाले महाराज के मृदुल मंजुल स्वरूप को टकटक निहार रहे हैं।

ल०—महारानी देखिये, देखिये॥

दोहा

तव पितु निज प्रोहित निपुन सतानन्द के संग।
सजन बसिष्ठादिकन कों, पूजत सहित उमंग॥१६॥

राम—ये देखने योग्य हैं।

प्रिय न काहि रघु जनक का कुल सम्बन्ध पवित्र।
करता धरता यहँ सभंग आपहि विश्वामित्र ॥१७॥

सीता—और देखिये, ये चारो भाई सगुन सायत से मुण्डन कराकर विवाह का कंकन बाँधे उपस्थित हैं, अहा! ऐसा जान पड़ता है मानो हम लोग जनकपुर में बैठे हैं और यह वही समय वर्त रहा है।

राम—*सुमुखी! बरतत समय यह, होत वही परतीत।*
गौतम देव-प्रदत्त जब तेरा पानि पुनीत॥
कंकन-भूषित, जनु, महा उच्छव को अवतार।
महन करत प्रफुलित किया, माकों बारहिंबार ॥१८॥

ल०—देखिये आप हे, ये श्री माण्डवी हैं और ये वधू श्रुतिकीर्ति हैं।

सीता—और यह दूसरी कौन हैं?

ल०—[लज्जा से मुसकरा कर आप ही आप] महारानी सीता अब उर्मिला को पूछ रही हैं, सो किसी बहाने यह बात उड़ानी चाहिये। [प्रगट] श्रीमती, देखने योग्य इधर है, आइये, भगवान परशुराम जी के दर्शन कीजिये।

सीता—[भय में पड़कर] इनके देखने मे तो भय लगता है।

राम—ऋषि महाराज को नमस्कार है।

ल०—महारानी देखो देखो, यह महाराज ने ऋषि के धर्म,......

राम—[आँख बचाते हुए] अजी, अभी तो बहुत देखने को पड़ा है, और ही कहीं दिखलाओ।

सीता—[स्नेह और आदर से देखकर] आर्यपुत्र, इस विनय बड़ाई

मे ही आपकी शोभा है ।

ल०—लीजिये, हम सब अयोध्या मे आ पहुँचे ।

राम—[आँसू भरकर] हा ! मुझे स्मरण है ! भलीभाँति स्मरण है !!

ब्याह जब सब भाइ, अछत तात सुख-शुद्ध चरन ।
मुदित दुलारति माइ कहाँ हमारे ते दिवस ॥१९॥

और तभी की ये जानकी हैं —

छिटकी जेह गोल कपोलनि पै, बिखरी अलकैं झलकैं घुँघरारी ।
रद कुन्द-कली सम बारी-सी बैस की, भोरी धरैं मुख पै छबि प्यारी ।
सोठि देह सुभाइ बिलास भरी, ससि की खुरी जीति लई उजियारी ।
निज लोल कलोलनि डोलनि सों, मम मायन मोद बढ़ावन हारी ।

ल०—और देखो, यह मन्थरा है ।

राम—[बिना उत्तर दिये और दूसरी जगह दिखाकर] प्यारी वैदेही,

शृङ्गवेरपुर में वही, यह खिरनी को वृच्छ ।
प्रिय निषाद पति सों यहीं, भया समागम अच्छ ॥२१॥

ल०—[हँसकर आपही आप] देखो, महाराज ने मझली माता का वृत्तान्त सब छोड दिया ।

सीता—देखिये, यहाँ हम लोगो की जटाये बाँधी जा रही है —

ल०—राजपाट दै निज सुतनि, त्यागि जगत जजाल ।
वृद्ध समय बन कों गये, सूरज-जस-भुआल ॥
वही अमल आरण्य-व्रत पावन पुन्य-समाज ।
बाल-काल ही में धर्‍यो, तुमने श्री महाराज ॥२२॥

सीता—ये विश्वकी वन्दना योग्य पुण्यसलिला भागीरथी बहरही हैं ?

राम—[चित्र देख कर] माता भागीरथी, आप रघुकुल की कुल देवी हो, मैं प्रणाम करता हूँ —

खोजत सगरसुत यज्ञ हय
 महि भेदि पातालहिं गये ।
मुनि कपिल-कोप कराल सों,
 जरि छार सब छिन में भये ।
अति कठिन तप तपि तब भगीरथ,
 सलिल अघहर लाइकै ।
उद्धार कियो पुरखानको,
 भगवति दया तुव पायकै ॥२३॥

सो हे जननी, आप अरुन्धती के समान बधू सीता पर सदा स्नेहमयी दृष्टि रखना ।

ल०—यह वही श्यामघाट है जो भारद्वाज के बतलाये चित्रकूट के मार्ग में कालिन्दी के तट पर मिला था ।

सीता—आर्य पुत्र, क्या इस प्रदेश का भी आपको स्मरण है ?

राम—भला, यह कैसे विस्मरण हो सकता है !

जब मारग के स्रम व्यापन सों, सिथिलाइ के आलस सोइ गई ।
मिसिली मुरझाइ मृनालिनि सी, तन छीन पसीनन न्हाइ गई ।
कछु मेरे तरे परिरम्भन सों, मढि अंग-हराहरि खोइ गई ।
तुम मानि प्रिया ! यह वाही घरी, हियरा लगि मेरे तू सोइ गई ॥२४

ल०—अब यहाँ से विन्ध्याचल के बन का आरम्भ हुआ है, यह देखिये, विराध के संग आपका संग्राम हो रहा है ।

से ही आपकी शोभा है।

ल०—लीजिये, हम सब अयोध्या मे आ पहुँचे।

राम—[आँसू भरकर] हा! मुझे स्मरण है! भलीभाँति स्मरण है!!

ब्याह जब सब भाइ, अछत तात सस-प्रद चरन।
मुदित दुलाराति-माइ कहाँ हमारे ते दिवस ॥१६॥

और तभी की ये जानकी हैं—

त्रुटकी जिह गोल कपोलनि पै, बिखरी अलकैं झलकैं घुँघरारी।
रद कुन्द-कली सम-वारी-सी बैस की, भोरी भरे मुख पै छबि प्यारी।
सठि देह सुभाइ बिलास भरी, ससि की सुरी जीति लई उजियारी।
निज लोल कलोलनि डालनि सों, मम मायन मोद बढावन हारी।

ल०—और देखो, यह मन्थरा है।

राम—[बिना उत्तर दिये और दूसरी जगह दिखाकर] प्यारी!

सृङ्गवरपुर मे यही, यह सिरनी को वृच्छ।
प्रिय निषाद-पति सों यही, भयो समागम स्वच्छ ॥२१॥

ल०—[हँसकर आपही आप] देखो, महाराज ने मझली माता का वृत्तान्त सब छोड दिया।

सीता—देखिये, यहाँ हम लोगो की जटाये बाँधी जा रही है—

ल०—राजपाट दै निज सुतनि, त्यागि जगत जजाल।
वृद्ध समय बन को गये, सूरज-बंस भुआल॥
वही अमल आरण्य-व्रत पावन पुन्य-समाज।
बाल-काल ही में धर्यो, तुमने श्री महाराज ॥२२॥

सीता—ये विश्वकी वन्दना योग्य पुण्यसलिला भागीरथी बहरही हैं ?

राम—[चित्र देख कर] माता भागीरथी, आप रघुकुल की कुल देवी हो, मैं प्रणाम कर्त्ता हूँ —

खोजत सगरसुत यज्ञ हय
मांहि मूंदि पातालहिं गये ।
मुनि कपिल-कोप कराल सों,
जरि छार सब छिन में भये ।
अति कठिन तप तपि तब भगीरथ,
सलिल अघहर लाइकै ।
उद्धार कियो पुरखानको,
भगवति दया तुव पायकै ॥२२॥

मां हे जननी, आप अरुन्धती के समान वधू सीता पर सदा स्नेहमयी दृष्टि रखना ।

ल०—यह वही श्यामघाट है, जो भारद्वाज के बतलाये चित्रकूट के मार्ग में कालिन्दी के तट पर मिला था ।

सीता—आर्य पुत्र, क्या इस प्रदेश का भी आपको स्मरण है ?

राम—भला, यह कैसे विस्मरण हो सकता है !

जब मारग के श्रम व्यापन सों, सिथिलाइ कै आलस मोइ गईं ।
मिसिलीं मुरझाई मृनालिनि सी, जल-छीन पसीननु मोइ गईं ।
कछु मेरे तनै परिरम्भन सों, सठि अंग-हराहरि सोइ गईं ।
सुख मानि प्रिया ! यहै वाही घरी, हियरा लगि मेरे तू सोइ गईं ॥२३॥

ल०—अब यहाँ से विन्ध्याचल के बन का आरम्भ हुआ है, वह देखिये, विराध के संग आपका संग्राम हो रहा है ।

सीता—इसे रहने दीजिये, यह देखिये, धूप से बचने के लिये आर्यपुत्र ताड के पत्तो का छाता लगाये हम लोगों के साथ दक्षिणारण्य मे प्रवेश कर रहे हैं।

राम—*गिरि निरझरनी-तीर यह, वहीं तपोवन पुंज।*
यतिन आसरम ढिंग जहाँ ठौर ठौर द्रुम कुंज।
आतिथ्य अति शान्ति प्रिय निवसत यहीं गृहस्थ।
खाय मुठी भर भात जो, नित राखत चित स्वस्थ॥२५॥

ल०—देखिये, जनस्थान के बीचोबीच सघन द्रुम कुजों के कारण सतत शीतल श्यामल अरण्य से घिरा हुआ और गोदावरी की कलकल ध्वनि से प्रतिध्वनित गुफा वाला यह प्रस्रवणाचल है, बरसते हुए बादल-दल की शोभा से इसकी घनश्यामता और भी बढ गई है।

राम—*सुरति सुतन! उन दिनन की, तिहि गिरि पै सौमित्र।*
किये दोऊ हम मुदित जब सेवा विविध विचित्र।
सुरति सुरस तटनी तहाँ, गोदावरि की है न ?
सुरति कहो तिहि निकट का, नित विचरन सुखदेन॥२६॥

ल०—यह पचवटी में सूर्पणखा है।

सीता—हा! आर्यपुत्र! बस यहीं तक आपके दर्शन होंगे!!

राम—प्यारी! वियोग से इतना क्यो डरती हो, यह तो चित्र है।

सीता—कुछ भी हो, दुर्जन से दुख तो होता ही है।

राम—हाय! जनस्थान की बात तो ऐसी जान पडती है मानो अभी हो रही हो।

ल०—रचि कनक-छल मृग राक्षसहिं, जो कछु करयो
भारी करयो प्रतिकार ताको, हाय! तउ सो
अरु सीय हित तुम विकल क्रन्दन जो विजन वनमें किया।
सुनि ताहि को पाषानहू रोवत फटत वज्जुर हियो ।।२८।।

सीता—[आँसू भरकर] हा! देव रघुकुल आनन्दकन्द! इतना दुख आपको मेरे ही लिये झेलना पड़ा था॥

ल०—[सा रचना देने के अभिप्राय से देखकर] आर्ये! यह क्या है?

तुव नयन सन टपकत टपा-टप यह लगी अँसुअन झरी।
बिखरी परी भुव पै परी जनु टूटि मोतिन की लरी॥
रोकत यदपि भूल सों विरह की बेदना उर तज भर।
जब अधर नासा-पुट कँपहिं अनुमान सों जानी परै ॥२६॥

राम—लाल!

तनतो सिया-विरहाग्नि निकराल कसी है रही।
पै बैर अपना लेन के हित सकल मै सहजहिं सही॥
अब चित्र देखन सों वही पुनि जरि उठी भभकाइकै।
हिय मरम घाव समान पीडा देति उर उपजाइकै ॥३०॥

सीता—हा धिक् धिक्! उद्वेग के विपुल हो जाने के कारण मुझे ऐसा सूझ पड़ता है मानो आर्यपुत्र से फिर मेरा वियोग हो गया हो।

ल०—[आप ही आप] अच्छा ...
[चित्र देख कर प्रगट] मन्वन्तर सम

अपने पूज्य गृद्धराज जटायु के विक्रम मय चरित्र का उदाहरण स्वरूप यह चित्र देखिये।

सीता—हा तात! अपूर्व पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ आपका अपत्यस्नेह सराहनीय है।

राम—हा तात! कश्यप! पक्षिराज! पुण्यतीर्थ स्वरूप! आपके समान साधु महात्मा फिर कहाँ मिलेंगे!

ल०—यह जनस्थान के पश्चिम में कबन्ध दानव के रहने के स्थान चित्रकुञ्जवन नाम दण्डकारण्य का भाग है, यहाँ ऋष्यमूक पर्वत पर मतगमुनि का आश्रम है, यह श्रवणानाम सिद्ध-सिवरी और यह वही पम्पा नाम का सरोवर है।

सीता—अरे! यहाँ आर्यपुत्र क्रोध और शोक से अधीर होकर मेरे लिये उन्मुक्त-कण्ठ से रोये थे।

राम—देवी, यह बड़ा ही रमणीय सर है—

यहिं मल्लिका जाति के हस महा मृदु बोलत जोवन के मद छाये।
निज पंख सों दीर्घ मृनालनु के सित कंज मनोहर मंजु कँपाये॥
कछु जैस ढरे औ नवीन भरे अँसुआन के बीच में औसर पाये।
इत हेरयो जबै जब ता पल में लगे उत्पलनील कितै लहराये।२१

ल०—ये महाराज हनूमान जी हैं।

सी०—बहुत दिनों के शोकसागर में डूबे हुए लोगों का उद्धार कर अत्यन्त उपकार शील निस्सन्देह ये महाभाग मरुतनन्दन हैं।

राम—अजनि मन रजन विपुल, महाबाहु बलवान।
जग अरु हम जिनके ऋनी, ते यह श्री हनुमान ॥२॥

सी०—लाल ! इस पर्वत का क्या नाम है जिसके कुसुमित कदम्बों पर बैठे मयूर गान कर रहे हैं, और जहाँ वृक्ष के नीचे, मूर्छित दशा मे फीकी कान्ति वाले आर्यपुत्र, जिनका केवल प्रभाव सौन्दर्य शेष रह गया है और जिन्हे रोते हुए तुम सँभाल रहे हो, दर्शाये गये है।

ल०—अरजन पहुप सुगन्धित गिरि सो माल्यवान जिहि नामा।
जासु शिखिर-आश्रयित सघन घन श्याम हृदय अभिरामा ॥
निरमो निरमो तात ! कहो जनि, सुनन हत बल नाहीं।
लगत मनहु सिय विरह वेदना सालनि पुनि उर माहीं ॥३॥

ल०—यहाँ से आगे स्वय आर्य के और कपिगणों के असख्य अद्भुत कार्य क्रमपूर्वक दिखाये गये हैं किन्तु जान पडता है कि महारानी थक गई है, इस कारण निवेदन है कि आप कुछ विश्राम कर लीजिये।

सी०—आर्यपुत्र ! इन चित्रदर्शन से मुझ गर्भिणी की एक इच्छा हुई है, कहिये तो कहूँ।

राम—अवश्य कहो।

सी०—मेरे मन में आती है कि एक बार फिर उन सघन सुन्दर वनों में विहार करूँ, और भगवती भागीरथी के पवित्र निर्मल शीतल गम्भीर नीर मे स्वयं जी भरकर गोते लगाऊँ।

राम—भैया लक्ष्मण !

अपने पूज्य गृद्धराज जटायु के विक्रम मय चरित्र का उदाहरण स्वरूप यह चित्र देखिये।

सीता—हा तात! अपूर्व पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ आपका अपत्यस्नेह सराहनीय है।

राम—हा तात! कश्यप! पक्षिराज! पुण्यतीर्थ-स्वरूप! आपके समान साधु महात्मा फिर कहाँ मिलेंगे!

ल०—यह जनस्थान के पश्चिम में कबन्ध दानव के रहने के स्थान चित्रकुञ्जवन नाम दण्डकारण्य का भाग है, यहाँ ऋष्यमूक पर्वत पर मतंगमुनि का आश्रम है, यह श्रवणनाम सिद्ध-सिवरी और यह वही पम्पा नाम का सरोवर है।

सीता—अरे! यहाँ आर्यपुत्र क्रोध और शोक से अधीर होकर मेरे लिये उन्मुक्त-कण्ठ से रोये थे।

राम—देखो यह बड़ा ही रमणीय सर है—

यहि मल्लिक जाति के हंस महा मृदु बोलत जोबन के मद छाये।
निज पंख सों दीर्घ मृनालनु के सित कंज मनोहर मंजु कँपाये॥
कछु जैस दुरे-औ नवीन भरे अँसुआन के बीच में औसर पाये।
इत हेरधा जबै जल ता पल में लगे उत्पलनील किधौं लहराये॥३१॥

ल०—ये महाराज हनूमान जी हैं।

सी०—बहुत दिनों के शोकसागर में डूबे हुए लोगों का उद्धार कर अत्यन्त उपकार शील निस्सन्देह ये महाभाग मरुतनन्दन हैं।

सख है अथवा दुख सो, निहचै बैठाति नाहि ।
मद, प्रमाध निद्रा किधों विष छाया तन माहि ॥
डारि कबहुँ भ्रम भँमर यह चित्तहि देत भ्रमाय ।
अरु कबहू करि ताहि थिर, दृढ प्रमाद जगाय ॥
महन करन निज निज विषय, इन्द्रिय गन असमर्थ ।
अदभुत गढ रहस्य ज, समझि परत नहि अर्थ ॥३५॥

सी०—(हँस कर) आप का सर्वदा अनन्य एकरस प्रेम मुझ पर रहा है इस से बढकर और क्या कहना चाहिये।

राम—साँचे सनेह के जीवन सों, करै सूखत हीय प्रसून सुखारी ।
इन्द्रिन कों नित तृप्ति सुधा वसुधातल पै बरसावत भारी ॥
एतिक बैन विनीत तबै, दुखमोचन अम्बुज लोचन वारी ।
श्रोननिकों दुखदायन ज्यों, जग त्यों मन हेत रसायन प्यारी ॥३६॥

सी०—हे प्रियम्वद ! अब मैं सोऊँगी ।

(सोने के लिये इधर उधर स्थान ढूँढती है)

राम—अजी तुम क्या ढूँढती हो—

एकसो ब्याहघरी सो सदा वन गृह में नेह निबाहन हारी ।
बालपन और यौवन में पुनि तोहि समाद सुभावन वारी ॥
जाहि लख्यो सपनेहु नहीं अपन बस में कबहूँ पर नारी
रामकी ताही भुजाको सिराहनो लउ लगावहु अ।

ल०—महाराज !

राम—देखो, अभी तो गुरुजनो की आज्ञा मिली है कि गर्भिणी की जो इच्छा हो—पूर्ण कर देना, सो तुम जाकर एक उत्तम रथ ले आओ जिसमें इन्हें हाल न लगे।

सी०—महाराज आपको भी साथ चलना पड़ेगा।

राम—हे कठोर हृदयवाली ! भला यह भी क्या तुम्हारे कहने की बात है !

सी०—बस, ऐसी ही बातों मे आप मुझे बहुत प्रिय हैं।

ल०—जो महाराज की आज्ञा। [जाता है]

राम—प्यारी आओ इस खिड़की के पास विश्राम करलें।

राम—अच्छा मैं भी घूमते घूमते थक गई हूँ और इसी कारण मुझे भी नींद सी आ रही है।

राम—तो आओ मेरे सहारे मे सो जाओ।

बहु राछस चित्र बिलोकन सों, भयभीत कछू कल कम्पन पाई।
श्रमसीकर मञ्जु बसीकर के कानिक्रान सों जासु बढी रुचिराई॥
जनु इन्दु-मयूख विचुम्बित सीतल चन्दमनीन को हार सुहाई।
निज बाहु वही मम कंठ में डारि, करौ बिसराम प्रिये सुखदाई।३४।

[पास बैठ कर आनन्द से]

जस जस परसत अंग तव, सूझि न परत बिचार।
मोह लपेट्यो अटपटो, उपजत हियेविकार॥

सुख है अथवा दुख सा, निहुचै बैठाते नाहि ।
मद, प्रबोध निद्रा किधौं विष छाया तन माहि ॥
डारि कबहुँ भ्रम भमर यह चित्तहि देत भ्रमाय ।
अरु कबहूँ करि ताहि थिर, देत प्रमाद जगाय ॥
ग्रहन करन निज निज विषय, इन्द्रिय-गन असमर्थ ।
अदभुत गढ रहस्य ज, समझि परत नहिं अर्थ ॥३५॥

सी०—(हँस कर) आप का सर्वदा अनन्य एकरस प्रेम मुझ पर रहा है इस से बढकर और क्या कहना चाहिये ।

राम—साँचि सनेह के जीवन सों,करै सरसत हीय प्रसून सुखारी ।
इन्द्रिन कों नित तृप्ति सुधा वसुधातल पै बरसावत भारी ॥
एतिक बैन बिनीत तबै,दुखमोचन अम्बुज लोचन वारी ।
श्रोननिकों दुखदायन ज्यों,जग त्यों मन हेत रसायन प्यारी॥३

सी०—हे प्रियम्वद ! अब मैं सोऊँगी ।

(सोने के लिये इधर उधर स्थान ढूँढता है)

राम—अजी तुम क्या ढूँढती हो—

एकसो ब्याहघरी सा सदा नन गृह में नह निवाहन हारी ।
बालपन और यौवन में पानि तोहि समोद सुआवत वारी ॥
जाहि लख्यो सपनेहु नहीं अपन बस में काहु पर नारी ।
रामकी ताही भुजाको सिराहनो लउ लगावहु प्रानपियारी॥३७

सी०—(नींद का नाट्य करती हुई); ऐसे ही हैं, आर्यपुत्र ! ठीक ऐसे ही हैं।

राम०—क्या ! प्रियम्वदा गोद मे सोगई ! (स्नेह से देखकर)

गृह की याहि गृहलाच्छमी पूरन सुखमा साज ।
अमृत सलाई सुभग यहि इन नयनन के काज ।।
तन परसत ऐसी लगै जनु चन्दन रसधार ।
यहि भुज सीतल मृदुल गल मानहु मोतियन हार ।।
कछु न जाको लगत प्रिय, जहाँ न सुख सजोग ।
किन्तु दुसह दुखको भरयो केवल जासु वियोग ।।३८।।

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्र०—उपस्थित है महाराज ।

रा०—अरे कौन ?

प्र०—दुर्मुख आपका गुप्तचर ।

रा०—(आप ही आप) दुर्मुख तो रनवास का सेवक है उसे तो हमने नगर के लोगों का भेद लेने को भेजा था (प्रगट) अच्छा आने दो।

(दुर्मुख का प्रवेश)

दु० (आप ही आप) हाय महारानी सीता के विषय में ऐसे जनापवाद को जिसे सपने में भी विचारने से पाप लगता है भगवान रामचन्द्र से कैसे कहूँगा ! बिना कहे बनती भी नहीं क्या करूँ मुझ अभागे का तो काम ही यह है !

सीता—[स्वप्नावस्था में विलाप सा करती हुई] हाय प्यारे आर्य पुत्र कहाँ हो ?

राम—ओहो! चित्र देखने से जो उत्कण्ठा हुई उसे बढ़ाने वाली मेरी ही विरह-भावना सपने में भी प्यारी को चैन नहीं लेने देती।

[स्नेह से सीता के शरीर पर हाथ फेरते हुए]

सुख दुख में नित एक, हृदय का प्रिय विश्राम थल।
सब विधि सों अनुकूल, विसद लच्छन मय अविचल॥
जासु सरसता सकै न हरि, कबहूँ जरठाई।
ज्यों ज्यों बाढ़त सघन सघन सुन्दर सुखदाई॥
जो अवसर पै सकोच तजि परनत दृढ़ अनुराग सत।
जग दुरलभ सज्जन प्रेम अस बड़भागी कोउ लहत॥३९॥

दु०—[आगे बढ़ कर] महाराज की जय हो।

राम—कहो क्या समाचार लाये ?

दु०—सब नगरवासी आपकी बड़ाई करते हैं और कहते हैं कि हम लोग इनके सुखद सुराज्य में बड़े महाराज दशरथ को भी भूल गये।

राम—यह तो बड़ाई हुई दोष भी तो कुछ कहो जिससे उसे दूर करने का उपाय किया जाय।

दु०—[आँसू भर कर] सुनिये महाराज [कान में कहता है]।

रा०—हाय! यह कैसा असह्य वचन वज्राघात है!!

[मूर्छित होते हैं]

दु०—धीरज धरो, महाराज! धीरज धरो!

राम—[ठंडी साँस भरके] हाय !

हा सिय-पर घर-वास को, कैसो बुरो चवाउ ।
शान्त कियो राचि राचि अतुल, अद्भुत तासु उपाउ ॥
अब सो वही कुभाग बस, पुनि पुनि जागत दौर ।
कूकर काटन जहर सम, फैलि गयो सब ठौर ॥४०॥

हाय मैं अभागा अब क्या करूँ [विचार कर शोक के साथ]

लोकाराधन धर्म, सब प्रकार सज्जनन को ।
सो पितु पाल्यो धर्म, निज प्राननि अरु मोहि तजि ॥४१॥

उसे मैं कैसे दूषित कर सकता हूँ—अभी भगवान वशिष्ठ जी की भी तो यही आज्ञा मिली है।

जग उत्तम रवि कुल-नृपति, सब विधि परम पवित्र ।
तिन कर अनुकरनीय प्रिय, उज्ज्वल साधु-चरित्र ॥
सो तिह कुल मो जनम सों, भयो मलीन अपार ।
जग जिह चलत चवाउ अस, मुहिं अधमहिं धिक्कार ॥४२॥

हा देवी यज्ञात्मजा ! हा निज जन्म-रूप अनुग्रह से वसुन्धरा को पवित्र करने वाली विदेहवंशनन्दिनी ! हा ! पावक, वशिष्ठ और अरुन्धती द्वारा प्रशंसित प्रशस्त पुण्यशीलवती ! हा पतिप्राणा सीता ! हा कठिन महारण्य-वास की प्यारी सखी ! हा तात प्रेमपालिता ! हा अल्प किन्तु मधुर मंजु भाषिणी किस कारण तुम्हारे भाग्य ने ऐसा पलटा खाया है, क्योंकि—

तुमहीं सों यह जगत होतु, सिय सत चिवि पावन ।
पै तुम्हरी चहुँ चरचा जग जन करत अपावन ॥
है तुमहीं सों लाग, पियारी सकल सनाथा ।
किन्तु हाय तुम भोगहु दुख, जनु निपट अनाथा ॥४३॥

[दुर्मुख से] दुर्मुख तुम लक्ष्मण से जाकर कहो कि तुम्हारे नये महाराज राम की यह आज्ञा है [कान में कहते हैं]

दु०—केवल दुर्जनों के कहने से यह आपने क्या ठान लिया है, इससे तो आप पर कलंक लगेगा, महारानी अग्नि परीक्षा में भी विशुद्ध प्रमाणित हो चुकी हैं और फिर आजकल तो उनके गर्भ में पवित्र रघुकुल के सन्तान की स्थिति है, यह भी विचार करना होगा।

राम०—अरे चुप, भला प्रजा के लोग दुर्जन किस तरह हो सकते हैं—

निरत प्रजा प्रिय भानुकुल, सब प्रकार सुखदाय ।
विधि बस मम संसर्ग सों, भयो कलंकित हाय ॥
कोरे कासनु पै भई, सिया सादि की रीति ।
अरे अनोखी भाँति सों, को करि है परतीति ॥४४॥

बस, तू जा चला जा।

दु०—हाय महारानी !

[गया]

राम—हाय ! मैं निष्ठुर कर्म करने वाला बड़ा निर्दयी हूँ ।

निज बालपने सों सदा ही पली जनकादिक की हिय मोद भई ।
उर अन्तर जो कबहूँ न करयो सब भाँति सों मातें सनेह छई ॥

अब दैकै दगा अपराध बिना तिहि सीयकों हाय ये कैसी भई।
जमराज के आनन दैन चहों जनु मैना कसाई कों सौंपि दई ॥४५॥

तो फिर हाय, जिसके छूने से भी पाप लगता है, ऐसा मैं अधर्मी, देवी को छूकर भी क्यों दूषित करूँ।

(सीता का सिर धीरे धीरे उठा कर अपना हाथ खींच के)

मोरी सिया मोहिं छाँडिदे, म अति अधम चंडाल हूँ।
दर्प्यो न होगो अस कहूँ अरु ना सुन्या होगा कहूँ ॥
लखि ऊपरी व्यौहार मम, श्रीखण्ड के धोखे परी।
दुरभाग नस विष बिटप सों अबला वृथा लिपटी अरी ॥४६॥

(उठकर) हा! आज पृथ्वी लौट गई, राम के जीवन का प्रयोजन नष्ट हो गया, अब जगत् सूना उजाड जंगल सा लगने लगा, यह संसार असार है, शरीर भी अपने लिये बोझ होगया है, कोई आश्रय भी तो नहीं रहा, किंकर्तव्य विमूढ हूँ, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, अथवा यों कहना चाहिये—

जगत में नित भोगन कों बिथा,
बस मिल्यों यह जीवन राम कों।
मरम भेदक प्रानन सों जड्यो,
सकत ना कढि बेबस चेतना ॥४७॥

हा जननी अरुन्धती! हा भगवान वशिष्ठ! हा विश्वामित्र! हा पवित्र पावक! हा देवी वसुन्धरा! हा जनक! हा

पिता ! हा माता ! हा परमोपकारी लंकाधिपति विभीषण ! हा प्यारे सुहृद सुग्रीव ! सौम्य हनुमान ! हा सखी त्रिजटा ! आज राम पापी ने तुम सब को धोखा दिया और तुम्हारा सब का निरादर किया। हाय अब मुझे इनके नाम लेने का भी अधिकार नहीं है। क्योंकि—

सच्चरित्र अनन्य । जगविदित हैं धनिधन्य ॥
कहँ मैं कृतघ्ननृसंस । हत सूर्यवंस प्रसंस ॥
अब लेतु जो इन नाम । सब बिधि पुनीत ललाम ॥
जनु परति तिनका अंक । हा ! हा ! करो सकलंक ॥४८॥

जिस मैं ने—

अपनी गिनि कैं हियरा सों लगी, निरसंक जो नींद ने आइ गही।
मृदुमूरतिवंत रमा गृह की सुखमा सों सनी सुखदा दुलही ॥
सपने में भयाकुल गर्भवती, दिन पूर के भार सों काँपि रही।
निरमाही अरे सोइ बजाहिया करि, राक्षस कों बलि दैन चही ॥४९॥

[सीता के चरण अपने माथ पर रखके] देवी ! देवी !! अन्तिम बार राम के शिर से आप के चरण कमलों का स्पर्श है—[रोते हैं]

[नेपथ्य में]

[दुहाई है महाराज की दुहाई है !!!]

रा०—देखौ तो यह क्या है ?

[फिर नेपथ्य में]

[तप किया जिसने अति दारुण,
    वसुधा यमुना तट रम्य में ।
लवण नाशत जो ऋषि-पुंज को,
    सरन में रघुनन्दन राखिय । ॥५०॥]

राम— भाई अहा आजीवन राक्षसों का नाश बना ही है अच्छा तो अभी इस कुम्भीनसी के पुत्र को नाश करने के लिये लक्ष्मणानुज शत्रुघ्न को भेजूँ [कुछ चलकर और फिर ठहर के] हा देवी, सुमन! कैसे अकेली छोड़ूँ । भगवती वसुन्धरा तुम अपनी प्यारी जानकी को देखती रहना तुम्हें सौंपता हूँ ।

जनक की रघु के घर वंश का,
    सतत जो सत मंगलदायिनी ।
लहलही लतिका जिह कीर्ति की,
    नृप सुता यह सोई वसुन्धरे ॥५१॥

(जाते हैं)

सीता–(सपने में) हाय प्यारे प्राणनाथ आप कहाँ हो ? (कट

दु०—देवी, कुमार लक्ष्मण ने कहला भेजा है कि रथ सज गया, श्रीमती आकर उस पर विराजमान हो जायँ।

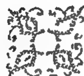
सी०—अच्छा मैं चलती हूँ पर चलने से गर्भभार काँपेगा इसलिये रथ को धीरे धीरे चलाना।

दु०—इधर से आइये, महारानी इधर से चलिये।

सी०—मेरा हाथ जोरि परिनाम—

ऋपि मुनियन को जे पर कारज करत दया के धाम।
श्री रघुबसमान्य कुल देविन, जे रच्छत अठजाम॥
आर्यपुत्र-पदपद्मनि, जे मम सुख सर्वस्व ललाम।
सब गुरुजन हित, जिन असीससों पावत सुख अभिराम॥५७॥

[सब जाते हैं]



अंक २

अथ विष्कम्भक

[नेपथ्य में]

(तपस्विनी जी आपका स्वागत है !)

(पथिक के भेष में तपस्विनी का प्रवेश)

त० —अहा, यह तो वनदेवी है जो फल फूल और पल्लवों का अर्घ बनाकर मेरे लिये लाई है।

(वनदेवी का प्रवेश)

व०— (अर्घ देकर)

भोगों यथा रुचि या वन कों, तव दर्स मिले धनि भाग हमारो।
पुण्य घनेनु सों प्रापत है, जग पावन सज्जन-सग-सहारो॥
छाहरि में विस्रमाय पियो जल चारु, मुनीनु के जोग पियारो।
कन्द फराहर पाइये जू काउ और की ना, सब भाँति तिहारो॥१

त०—अहा क्या कहना है।

---

* निज रुचि अनुसारा भोगहु सारा, वन यह धनि मम भागे।
सज्जन सतसँगा धरम प्रसँगा, मिलत सुकृति जो जागे॥
तरु छाँह सुहावन मृदुजल पावन, मुनिजन भोजन जोई।
फल या कन्दा सब स्वच्छन्दा, बरतहु निज गिन सोई॥

बहुधा प्रिय वृत्ति, रचै मधुरी, बतियानिसों चारु बिचार दृढावै।
पहँचानि आनन्दित नित्त नई, मति मंगल मोद मई मन भावै॥
रस एक अगार पिछार लसै, छल छिद्र बिना, त्रय ताप नसावै।
इमि सज्जन-पुण्य-चारित्र सदा चहुँ ओर बिछै सरसा सरसावै॥२[1]

(दोनों बैठती हैं)

व०—कृपाकर बतलाइये तो आपका शुभ नाम क्या है?

त०—मुझे लोग आत्रेयी कहते हैं।

व०—आर्ये आत्रेयी! अच्छा तो फिर आपका आना कहाँ से हुआ और इस दण्डकारण्य में विचरने से श्रीमती का क्या प्रयोजन है?

आ०—या बन में निवसत सुभग, अगस्तादि मुनि पुंज।
सुन्दर सुर सों नित करैं, साम गान की गुंज॥
साम गान की गुंज गाजि, मंजुल मन मोहत।
सत उपदेस असेस काज जो, जग मधि सोहत॥
तिन सों मैं वेदान्त पढ़न को प्रन धरि मन में।
बालमीकि ढिग सों सिधाइ बिचराती या बन में॥ ३॥

व०—अजी जब और ऋषि मुनि तो वेद का पारायण करने के लिये उन प्राचीन ब्रह्मज्ञानी वाल्मीकि जी की शिष्य-

---

[1] जग जन मनमोहन सविनय सोहन साधु वृत्ति रुचि धानी।
मति शुद्धि सयानी मंगल भानी बिमल समागम मानी॥
नित औंस अगारी पीठ पिछारी सरस सरस सुखदाई।
अस सुभग सप्रीती सज्जन रीती अकपट बिमल सुहाई॥

रूप से सेवा करते है, फिर कहिये आपके इतनी दूर आने का क्या कारण है ?

आ०—वहाँ पढने मे वडा विघ्न होता है, इसलिये इतनी दूर आना पडा।

व०—सो कैसे ?

आ०—वहाँ किसी देवी ने मा का दूध छूटते ही अत्यन्त विचित्र शैशव अवस्था के दो वालक लाकर उन महात्मा के अर्पण किये, जिनको देख ऋषियो का ही नहीं वरन सम्पूर्ण चराचर मात्र का मन स्नेह मे मुग्ध हो जाता है।

व०—आप उनका नाम जानती हैं ?

आ०—उस देवी ने उनका नाम "लवकुश" बतलाया और साथ ही साथ उनका प्रभाव भी जता दिया था।

व०—कैसा प्रभाव ?

आ०—गुप्त मत्र सहित जम्भकास्त्र उनको जन्म ही से सिद्ध है।

व०—यह तो वडे आश्चर्य की बात है !!

आ०—भगवान वाल्मीकि जी ने धाय का काम आप अंगीकार कर उन दोनों को पाला पोसा, और मुडन सस्कार कर वडी सावधानी से उन्हें, तीनो वेद छोडकर सब विद्या पढा दीं, फिर गर्भ के ग्यारहवें वर्ष लगते ही क्षत्रियोचित विधि से यज्ञोपवीत देकर शेष तीनो वेद भी पढा दिये। उन की बुद्धि वडी तीव्र और धारणा शक्ति अत्यन्त ही प्रबल है। उनके साथ भला हमारा किस प्रकार निर्वाह हो सकता है, क्योंकि—

वितरन गुरु इक सम करत, बुध मूरख को ज्ञान।
करत न, हरत न कछु तिन बोध शक्ति परिमान॥
किन्तु समय परिनाम के अन्तर बिपुल लखात।
रहत मूढ के मूढ इक, अन्य चतुर बनिजात॥
जिमि दिनेस सम भाव सों नभ में करत प्रकास।
परन प्रति थल पर परत, तासु किरन आभास॥
मनि मंजुल समरथ सदा, बिम्ब ग्रहन के माहिं।
पै माटी के ढेल कहु, द्युतिमय दीसत नाहिं॥४॥

व०—बस यही विघ्न था ?

आ०—और भी है।

व०—वह और क्या है ?

आ०—एक दिन मध्याह्नकाल में वह महर्षि महाराज तमसा नदी के तीर पर गये, वहाँ देखा कि सानन्द विचरते हुए क्रौंच पक्षी के जोडे में से एक को व्याध ने मार डाला है, उसी समय अकस्मात ऋषि के मुख से नीचे लिखे आशय की स्पष्ट, दोषरहित, पूर्वापर सम्बन्धयुक्त मधुर अनुष्टुप छन्द के रूप में वाग्देवी का प्रकाश हुआ।

"प्रेमभरी अति चाह सों मदमाती सानन्द।
क्राचनि की जोडी फिरत, विहरत जो स्वच्छन्द॥
हानि तिन में सों एक कों, कियो परम अपराध।
जुग जुग लों तोहि न मिलहिं, कबहुँ बड़ाई व्याध" ॥५॥

व०—अरे ! यह तो वेद से भिन्न नये छन्द का साक्षात्कार है !!

आ०—उसी समय भूतभावन पद्मयोनि भगवान चतुरानन ने शब्द ब्रह्मप्रकाशधारी ऋषि को दर्शन देकर कहा "हे मुनि-पुंगव ! आप को शब्द ब्रह्म के स्वरूप का भलीभाँति ज्ञान हो गया है, इस हेतु अब कुछ रामचरित रचिये और अपनी दिव्य प्रतिभा की प्रभा को निर्विघ्न फैलाते हुए आदि कवि की उपाधि को सार्थक करिये। बस यह कहकर वह अन्तर्द्धान होगये । इस प्रकार मानव समाज में पहले ही पहल श्री वाल्मीकि मुनि ने शब्दब्रह्मबीज से रामायण सरीखे सरल इतिहास कल्पतरु को पल्लवित किया ।

व०—चलो हर्ष की बात है अब तो सारा संसार पण्डित हो जायगा ।

आ०—इन्हीं कारणों से, जो कि मैंने आपको बतलाये, विद्याध्ययन में बड़ा विघ्न उपस्थित होता है ।

व०—ठीक है, होता होगा ।

आ०—हे कल्याणमयी, मैं भली भाँति विश्राम कर चुकी, अब तो कृपा कर अगस्त जी के आश्रम का मार्ग बता दीजिये ।

व०—यहाँ से पञ्चवटी में होकर, बस, गोदावरी के किनारे ही किनारे आप चली जाइये ।

आ०—[आँसू भरकर] क्या तपोवन यही है, क्या इसे ही पञ्चवटी कहते हैं, क्या यही नदी गोदावरी है, क्या इसी पर्वत का नाम प्रस्त्रवणाचल है, क्या जनस्थान की वनदेवी वासन्ती आप ही हैं ?

वा०—हाँजी, हैं तो सब वेही जैसा कि आप कहती हैं ।

आ०—वैदी जानकी,

वही तुव प्रिय बधु, द्रुमादिक ये सुखदाई।
जिन प्रसग बस चलत कबहुँ चरचा मन माई ॥
यदपि नाम अवशेष मात्र तुव हाय पियारी।
किन्तु इनहिं लखि लगत मनहुँ तुम नयन अगारी ॥६॥

वा०—[भय के साथ आप ही आप] "यदपि नाम अवशेष मात्र तुव हाय पियारी" इनने क्यों कहा ! [प्रगट] आर्ये, बतलाओ तो सीतादेवी पर ऐसी क्या विपत्ति पडी ?

आ०—केवल विपत्ति ही नहीं पडी बिचारी को कलक भी लगा [कान में कहती है]

वा०—हाय हाय यह तो दारुण दैव का बडा प्रकोप हुआ [मूर्छित होती है]

आ०—अजी धीरज धरो, धीरज धरो।

वा०—हा प्यारी सखी ! हा सौभाग्यवती ! क्या तेरे भाग में यही बदा था ! रामचन्द्र ! रामचन्द्र ! रहने दो अब तुम्हारे नाम लेने से क्या है ॥ आर्ये आत्रेयी, जब उन्हें त्याग कर लक्ष्मण जी लौट आये तब सीता पर कैसी बीती, क्योंकि यह भी आप को कुछ विदित है।

आ०—नहीं, कुछ नहीं।

वा० – हाय हाय वशिष्ठ और अरुन्धती से रक्षित और अधिकृत रघुकुल में, बड़ी बूढ़ी कौशिल्या आदि के जीते जी वह घोर अनर्थ किस प्रकार हुआ ?

आ०—तब बड़े बूढ़े तो सब शृंगी ऋषि के आश्रम में गये हुए थे। अब जब कि बारह वर्ष पीछे उनका यज्ञ समाप्त होने पर सब के सब वहाँ से विदा होने लगे तब

छाँहरि में छाल जिनकी कुरोदि कीरानि कों,
चोंचनु निकारि सात सुर दरसावहीं।
जबहि सजानैं गज गडथल पींडनि सों,
टपकि घमीले जिम कुसुम सुहावहीं।
गेस चारु कलद्रुम फूल बरसाइ मानो,
गोदावरी पूजि तासु गुन गन गावहीं ॥६॥
(इति विष्कम्भक)

[स्थान दण्डक वन]

(पुष्पक विमान में बैठे हुए खड्ग हाथ में लिये श्रीराम का प्रवेश)

रे हस्त सूधे आज। द्विज सिसुहिं ज्यावन काज।
अब यह कृपानें सम्हार। करु सूद्र मुनि पै वार ॥
अति दुसह गर्भहिं धारि। चित खिन्न जनक कुमारि।
तजी छीन जिहि कल नाहिं। तिहि बिजन बन के माहिं ॥
जो तजत नहिं सकुचात। ता राम को तू गात।
ता मधि कठोर, नृशंस। कितसों दया को अंस ॥१०॥

(प्रहार करके) अब तो निर्दय हृदय राम के सदृश कर्म हुआ और ब्राह्मण का पुत्र भी जी उठा।

(शम्बुक का दिव्य पुरुष के रूप में प्रवेश)

दि० पु०—जय हो महाराज की जय हो—

जम-दण्डहूसों रखत जो नित, दण्ड तिनि मा कों दया
अब जी उठयो तासन मिसु यह, विपुल मम वैभव छया।
शम्बूक तव पद नवत, माँगत भक्ति भव-भय-हारिनी,
सत सग में यदि मृत्युहू मिलि जाय सोऊ तारिनी ॥११॥

राम०—दोनो बातें हमारे मन की हुई, अच्छा भाई! तुमने बड़ा तप किया है, इसलिये—

है जह पूरन आनँद ललाम,
जो परम पुण्य सम्पत्ति धाम।
अस भुव प्रकास जहँ दिव्य व्याप्त,
वैराज लोक हों तोहि प्राप्त ॥१२॥

श०—आप ही के चरणारविन्द के प्रताप से यह महिमा प्राप्त हुई है, इस मे तप का क्या फल है, अथवा तप ही ने यह महदुपकार किया हो क्योंकि—

जग नायक त्रायक पूज्य प्रभो,
गरुडध्वज, शौरि, शरण्य विभो।
प्रिय पावन भावन भक्तिधनी,
जिह लागि करै मुनि-खोज घनी।
इत सो हरि खोजत माहि भये,
अपुही सत योजन आइ गये।
कहँ शूद्र अधीन मलीन-गती,
कहँ श्रीपति तीनहुँ लोकपती।

अपनाइ के जो मम शुद्धिकरी,
तप को यह पुण्य-प्रसाद, हरी !
नाहिं तो तजि औध सुराज-महा,
बन दंडक में तव काज कहा ॥१३॥

रा०—क्या यह दण्डक वन है (चारों ओर देख कर) हाँ ठीक है—

कहुँ सजल सस्य स्यामल, रसाल,
कहुँ सूखो रूखो अति कराल ।
कहुँ कहुँ झरना झर-झर निनाद,
जहँ गूँजि करत दस दिसि सनाद
उन तीरथ आश्रम गिरि समेत,
सर सरित गर्भ-कानन निकेत ।
पूरब-परिचित सों अपन जोइ,
दीसत दण्डक बन यही सोइ ॥१४॥

श०—हाँ यह वही दण्डक वन है जहाँ पूर्व निवास करते हुए—

चौदह सहस रनधीर, अति भीम राछस बीर ।
खरदूषणादि कराल, तुमने हने तिहकाल ॥१५॥

राम०—तो यह केवल दण्डक वन ही नहीं, जनस्थान का भी कुछ भाग इसमें मिला है ?

श०—ठीक ऐसा ही है । देखिये, दक्षिण की ओर प्राणीमात्र का हृदय दहलाने वाली, मदोन्मत प्रचंड व्याघ्रादि वन-

जन्तुओं से भरी, यह सघन विन्ध्याटवी उसी जनस्थान पर्यन्त चली गई है।

ये जनस्थान सीमा महान,
जहँ सघन गहन वन विद्यमान।
निरसब्द सान्ति मय कहुँ अखड,
बन-जन्तु नाद सों कहुँ प्रचड।
जहँ लपलपात रसना अपार,
सुख सों सोवत अहि फन पसार।
तिन तप्त साँस सन कहुँ विसाल,
जरि उठत भयकर ज्वालमाल।
दै गई भूमि जहँ पै दरार,
दीसत कछु कछु जल तिन मँझार॥
अजगर श्रम-सीकर भासमान,
प्यासे गिरगट तिहि करत पान॥१६॥

रा०—पहला रस को घर यही, जनस्थान दरसात।
माहित अयकी सी परत, उन घोसन की बात॥१७॥

अरे क्या ये वे ही महावन हैं जिन्हें विदेह नन्दिनी बड़ा प्यार करती थीं? उन्हें वन में रहने का सदा ही चाव रहता था। अब प्यारी के बिना ऐसा मालूम होता है मानो इनमें अधिक भयकर ससार में कोई वस्तु ही नहीं है, हा!

(आँसू भरकर)

'मकरंद सुरभित विपिन में, तुव-सग बसिहौं पीउ !'
यह कहत जनु अनुभवति, अस रह्यो नेह-मय ता जीउ ॥१८॥
कछु हू करै ना तौउ ढिग वासि, करत बिपदहि दूरि।
अनासि जाको जो सुहृद, सो तासु जीवन-मूरि ॥१६॥

शा०—बस, महाराज! इन कठोर दृश्यों को छोडिये, इनसे आपका हृदय वृथा ही व्यथित होता है। अब आप जनस्थान-मध्यवर्ती शान्त गम्भीर वनों को देखिये, जहाँ मतवाले मनोहर मयूरों के कमनीय कोमल कण्ठ सरीखे हरे भरे पर्वत अपनी लहलही छटा छिटका रहे हैं, जो सघन शीतल श्यामल तरुण तरुओं की सुखद शोभा से सर्वत्र व्याप्त हो रहा है, और व्याघ्रादि जन्तुओं का उपद्रव न होने के कारण निर्भय विचरते हुए कुरगो की क्रीडास्थली बना है।

याहिं बेतस वल्लरी पै खग बैठि,
कलोल भरे मृदु बोल सुनावें।
तिनसों झरे-पुष्प-सुगन्धित तोय,
वहँ अति सीतल हीतल भावें।
फल पुज पकेनि के कारन स्यामल,
मजुल जम्बु निकुज लसावें।
उनमें रुकि के करि घोर घनी,
झरनानि के स्रोत समूह सुहावें ॥२०॥

इन साहनि में दल रीछनि को चासि,
जोवन जोर मरोर जतावै।
गिरि गंग के संग उमंग भरचो,
भयकारी धुनी घनघोर मचावै।
कहुँ कुंजर सों रुंदि कुन्दरुकी,
कुचिली निज गाँठिनकों दरसावै।
तिनसों कहुँ सीतल औ कसाय,
चुई रस-गन्धि चहूँ छिति छावै ॥२१॥

रा०—[आँसू रोक कर] अच्छा तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम विमान पर बैठकर दिव्यलोक को सिधारो।

श०—श्री महाराज, मैं पुरातन ब्रह्मज्ञानी भगवान अगस्तमुनि को प्रणाम करके आपके दिये हुए अक्षयलोक को जाता हूँ।

[जाता है]

रा०— ये बन सोई लख्यो पुनि आज,
जहाँ सुखसों बहुघोस बिताये।
भ्रात औ सीय के संग करे,
मुनिराजनि के सतसंग सुहाये।
नित्त फलाहर खात रहे,
निज धर्म के पालन में चितलाय।
तौऊ सबै जग-भोग-बिलासन,
के रस सों हम वंचित नाये ॥२२॥

ये गिरि सोई जहाँ मधुरी,
मदमत्त मयूरनि की धुनि छाई।
या वन में कमनीय मृगानि की,
लोल कलोलनि डोलनि भाई।

सोहे सरित्तट धारि घनी,
जलवृच्छन की नवनील निकाई।
मंजुल बंजुलमंजु लतानि की चारु,
चमीली जहाँ सुखमा सरसाई ॥२३॥

और—

जो देखन में दूर सों, लागत जनु घनमाल।
प्रस्रवणाचल सोइ यह, गोदावरी रसाल ॥ २४ ॥

या ऊँची सी सिखिर पै, गृध्रराज को तात।
रह्यो बास थल जाहि लगि, अजहुँ जीय पुलकात ॥
धुर याहि नीचे पुरन की, कुटी सुहावन छाइ।
बास कियो हमने रुचिर, लछिन सीय सग आइ ॥
लसत सघन स्यामल विपिन, जहँ हरषावत अग।
करि कलोल कलरव करत, नाना भाँति विहग ॥
फल भारन सों झालरे, हरे वृच्छ झुकि जाहिं।
झिलमिलाति झाँई सु तिन, गोदावरि जल माहिं ॥२५॥

हा! यह वही पचवटी है, यहीं अनेक दिन निवास करने के कारण ये प्रदेश हमारे विविध स्वच्छन्द विहारों

के साक्षी है, यहाँ कहीं सिया की प्यारी सखी वनदेवी वासन्ती रहती है। हाय मुझ पर यह न जाने क्या अनर्थ टूट पड़ा, कुछ समझ नहीं पड़ता।

कैधों चिर-सन्तापजु अति तीव्र विष-रस,
फैल सब तनमाहिं रोम रोम छायो है।
कैधों घाय कितहू ते सल्य को सकल यह,
वेग सों हृदय माहि सुदृढ़ समायो है॥
कैधों कोऊ पूरित मरम घाय खाय चोट,
तिराकि भयकर बिसूलि हरिआयो है।
होइ न बिरह-सोक, घनीभूत कोऊ दुख,
करि जाने बिकल मो चेतहू भुलायो है॥२६॥

तो भी मैं अपने पूर्व परिचित स्थानों को देखे बिना नहीं जा सकता। [देखकर] अब तो यहाँ की अवस्था में कुछ अन्तर हो गया है—

सोहत हो प्रथम जहाँ पै सरि सोत मंजु,
तहाँ अब बिपुल पुलिन दरसावै है।
बिरल हो प्रथम बिपिन तहाँ घनो भयो,
जहाँ घनो तहाँ अब बिरल दिखावै है॥
बहु दिन पाछे बिपरीत चिन्ह देखन सों,
यह कोऊ भिन्न बन भ्रम जिय आवै है।
जहाँ के तहाँ पै किन्तु अचल अचल हेरि,
"साई पचवटी" बिसवास ये दृढ़ावै है॥२७॥

हाय यहाँ से लौट जाने की इच्छा रहते हुए भी पंचवटी का स्नेह मुझे अपनी ओर बरबस खींचता है।

(करुणा भरे स्वर में)

बितय बहु दिन यहँ सिया संग,
जनु अपने ही घर सह उमंग।
नित नव यहँ की चरचा चलाइ,
पायो हम दोउन सुख सिहाइ।
अब हाय अकेलो प्रिया हीन,
अति दुसह बिरह दुख सों मलीन।
यह राम पातकी करि प्रवस
कैसे देखहि कस पंचवटी प्रदेस।
जो लखत, हाय तो सिय-वियोग,
उद्दीपत जियमें सोक-योग।
यदि नाहिं लखत, तउ असन्ताप,
सिर कृतघ्नता को चढ़त दोष।
कारन, जो प्रिय को प्रिय महान,
ताको नित चाहियतु करन मान।
अब, कैसें हु न कोऊ बचाउ,
हा हा नहिं कछु सूझत उपाउ॥२८॥

[शम्बूक का प्रवेश]

श०—जय हो! महाराज की जय हो!! अगस्त जी ने मेरे मुख से श्री महाराज का इस वन में शुभागमन सुनकर कहला

भेजा है कि विमान से आपके उतरते ही मंगलाचार की सामग्री सजाये, स्वागत करने के लिये अत्यन्त प्रेम पूर्वक, लोपामुद्रा, और सब आश्रमवासी श्रीमान् की बाट देख रहे हैं, सो हमारा आदर स्वीकार कर सबों का मनोर्थ पूरा कीजिये, पुष्पक विमान बहुत शीघ्र जाता है, अश्वमेध के समय तक तो आप उससे अयोध्या पहुँच सकते हैं।

रा०—महर्षि जी की आज्ञा सिर माथे।

श०—तो पुष्पक को फिर इधर फेरिये।

रा०—भगवती पचवटी ? बड़ों के आज्ञा पालन करने की शीघ्रता में तुम्हारी यथोचित सेवा किये बिना जो जा रहा हूँ, उसे थोड़ी देर के लिये क्षमा करना।

श०—देखिये, महाराज देखिये, यह वही क्रौंच गिरि है—

जहँ बाँस-पुंज कुञ्ज ललित कुटीर माहिं,
घोरत उलूक भीरि, घोर घुघियाइ कैं।
तासु धुनि प्रति धुनि सुनि काक कुल मूक
भयबस लेत ना उड़ान कहुँ धाइ कैं।
इतउत डोलत, सु बोलत हैं मोर, तिन,
सोर सुन, सरप दरप बिसराइ कैं।
परम पुरान श्रीखण्ड तरु कोटर में,
मारत स्वकुंडली सिकुरि घबराइ कैं॥२६॥

और

जिन कुहरनि गद गद नदति, गोदावरि की धार।
सिखिर स्याम, घन सजल सों, ते दक्खिनी पहार॥
करत कुलाहल दूरसों, चंचल उठत उतंग।
एक दूसरी सों जहाँ खाइ चपेट तरंग॥
अति अगाध बिलसत सलिल छटा अटल अभिराम।
मन भावन पावन परम ते सिर-संगम धाम॥

[जाते हैं]

अंक ३

अथ निष्कम्भक

(तमसा और मुरला दो नदियां का स्त्रीरूप में प्रवश)

त०— सखि मुरला, यहाँ कैसे फिर रही हो।

मु०—प्यारी तमसा, भगवान अगस्त ऋषि की पत्नी लोपामुद्रा ने मुझे नदी शिरोमणि के पास यह कहने भेजा है कि तुम जानती हो कि जब से रघू सीता से अलग हुए हैं तब से —

कहत न काऊ सुहृद सों, विथा राम गभीर।
तासों दिन दिन बढाति तिन, गूढ सघन मन पीर॥
यथा धातु पुटपाक में, कोउ जबै धरि जात।
भीतर ही भीतर जरति, बाहिर कछु न लखात॥ १॥

इस लिए उन सरीखी प्राणप्यारी विदेह-कुमारी पर महान कष्ट पड़ने के सोच में और उनके दुस्सह अथाह वियोग सन्ताप के कारण रामचन्द्र इन दिनों ऐसे दुर्बल हो गये हैं कि उनको देख कर मेरा हृदय काँपता है। और फिर अब लौटते समय वह पचवटी में आवेंगे तो वे प्रदेश अवश्य उनके दृष्टि गोचर होंगे जो प्रिया प्रीतम दानों के स्वच्छन्द विहार के साक्षी हैं। वीर गम्भीर रामचन्द्र के मूर्छित होने की पद पद पर आशका

है इसलिये भगवती गोदावरी! आपको उस समय अत्यन्त सावधान रहना होगा।

जब राम खेद समेत हों,
पुनि पुनि विकल गत-चेत हों।
तब तब कमल परिमल भरी,
सरि-सीकरनु-सीतल करी।
मृदु मन्द पौन चलाइयो,
सुठि उनहिं चेत कराइयो॥ २॥

त०—भगवती का विचार तो प्रेमानुकूल है किन्तु रामचन्द्र के मोह दूर करने का कारण तो पहिले ही से विद्यमान है।

मु०—सो कैसा?

त०—सुनिये, जब लक्ष्मण वाल्मीकि के तपोवन के पास सीता को त्याग कर चले आये, तब वह प्रसव की विपुल वेदना से घबड़ा कर गंगा जी की धारा में कूद पड़ीं। वहीं उनके दो बालक हुए, जिन्हें अत्यन्त अनुग्रह पूर्वक भगवती वसुन्धरा और भागीरथी रसातल को ले गयीं। और मा का दूध छूटते ही देवी जाह्नवी ने स्वयं दोनों बालक महर्षि वाल्मीकि के अर्पण कर दिये।

मु०—[आश्चर्य से]

सिय सम जनु की बिपतिहू, अचरज-जनक लखाय।
वालमीकि, मुनि, गंग से, करत जासु हित आय॥ ३॥

त०—और अभी सरयू के मुख से शम्बूक वध-वृतान्त सुनने के कारण रामचन्द्र के जनस्थान में आने की सम्भावना सुनकर, स्नेहमयी लोपामुद्रा के समान, ऐसे ही भय और शंका से प्रेरित होकर भगवती भागीरथी सीता समेत किसी गृह कार्य के बहाने गोदावरी से मिलने आई है।

मु०—भगवती भागीरथी का विचार बहुत ठीक है, क्योंकि राजधानी में अनेक लोकोन्नति साधनों की सफलता के लिये सतत कार्य में मग्न रहने से रामचन्द्र का चित्त बहला रहता है। और अब बिना किसी काम काज के उनका निरन्तर शोकावस्था में पञ्चवटी आना महा अनर्थकारी होगा, सो बतलाइये सीता देवी ऐसी दशा में उनका किस प्रकार आश्वासन करेंगी।

त०—इसीलिये तो भागरथी ने सीता से कहा कि 'बेटी यज्ञात्मजा वैदेही, आज चिरजीवि कुश लव की बारहवीं वर्ष गाँठ का दिन है, इस हेतु अपने पुरातन श्वसुर, राजर्षि, मनुवंश के प्रवर्तक, पापनाशक सूर्यदेव की पूजा निज हाथों से चुने हुए प्रफुल्लित पुष्पों से करो। हमारे प्रभाव से पृथ्वी पर विचरते हुए तुमको वन की देवियाँ भी नहीं देख सकेंगी, मनुष्य की तो क्या सामर्थ्य है।" यों आवश्यकतानुसार सीता उनका आश्वासन कर सकेंगी और उन्होंने मुझ से भी कहा है कि "तमसा, तुमसे सीता का अत्यन्त अनुराग है इसने तुम उनकी सहचरी होकर रहना।" सो जैसी मुझे आज्ञा मिली है उसीका पालन कर रही हूँ।

मु०—मैं भी यह वृतान्त भगवती लोपामुद्रा से निवेदन करूँ मेरी समझ में अब रामचन्द्र भी आगये होंगे।

त०—और यह देखो गोदावरी हृदय से निकल कर—

पियरी परी ओप कपोलन की, तन में दुबराई बढ़ी अति भारी ।
लटकाए लटें बिखरी मुख पै, उर सोचति मोचति लोचनवारी ॥
अति दीसति व्याकुल सोगसनी करुना रस की जनु मूरति प्यारी ।
तनधारी वियोग-विथा सी किधौं बन आइरही मिथिलेसदुलारी ॥४॥

मु०—क्या यह वही है ?

अति दीर्घ दारुन ताप बस, सिय हिय-कमल अकुलाइ ।
हा ! बिवस बिलुनित मुग्ध किसलय सम गयो कुम्हिलाइ ॥
दुबरी परी तन पीयरी इमि, क्वार की लहि घाम ।
जिमि केतकीसुम-गर्भगत मृदु पखुरी अभिराम ॥ ५ ॥

[जाती हैं]

[इति विष्कम्भक]



[नेपथ्य में]

[बड़ा ही अनर्थ हुआ ! बड़ा ही अनर्थ हुआ !!]

[फूल चुनत हुए करुणा और उत्कण्ठा के साथ सुनती हुई सीता का प्रवेश]

सी०—अरे ! ये बोल तो मेरी प्यारी सहेली वासन्ती का सा लगता है ।

[फिर नेपथ्य में]

[जो जानकी कर ललित कोमल सजकी परनानि सों
करभक पल्यो लहकात निज सुण्डाम चंचल बानि सों ।

सी०—[सुनकर] सो उसका क्या हुआ ?

[फिर नेपथ्य में]

[क्रीडत कामिनि संग कुलालि प्रमुदित परम सो सर में रह्यो ।
तिहिं मरा इक मातंग बल सन रूगि लरि मारन चह्यो ॥]

सी०—[घबड़ानी हुई धीरे धीरे पद चलकर] बचाओ आर्यपुत्र ! मेरे उस बच्चे को बचाओ [सुधि करके घबराहट से] हाय ! हाय !! ये ही बातें जिनके कहने का स्वभाव सा पड़ गया था अब फिर पञ्चवटी का दरस कर सहसा मेरे मुख से निकलती हैं । हा आर्यपुत्र !

[मूर्छित होती है]

त०—धीरज धरो बेटी, धीरज धरो—

[नेपथ्य में]

[हे विमानराज ! यहीं पर ठहर जाओ ।]

सी०—[हृदय सँभाल कर भय और उन्माद से] जल भरे गरजते हुए धाराधर की मधुर गम्भीर धुनि के समान यह सरस वाणी कहाँ से आई जिनके कान में पड़ते ही तुरन्त मुझ अभागिनी में जान सी पड़ गई है ।

त०—[स्नेह से आँसू भर कर]

कितहूँ सों लहि अस्फुट नाद कों,
कवन हेत सिया अस तू भई ।
चकित चंचल औ उतकण्ठिता,
जिमि ध्वनी घन की सुनि मोरिनी ॥ ७ ॥

सी०—क्या कहा? माता! यही कि स्फुट नहीं है, मुझे तो बोल पहिचानने मे लगा कि स्वयं आर्यपुत्र ही बोल रहे हैं।

त०—सुना तो गया है कि इक्ष्वाकुवंशी राजा श्री रामचन्द्र जनस्थान मे शूद्र तपस्वी को दण्ड देने को आए हुए हैं।

सी०—धन्य धन्य महाराज अपने राजधर्म में दृढ बने हुए हैं।

[नेपथ्य में]

[झर-झर झर झरना झरत, जिहि गुफानि सब काल।
गोदावरि सरि-तट मिलीं, यह सोई गिरि-माल ॥
प्रिया संग बहुतक दिवस, बिताये याही ठाम।
द्रुम मृग हू जहॅ के लगत, मेरे सुहृद ललाम ॥८॥]

सी०—यह तो आर्यपुत्र ही है! हाय प्रभात समय के शशि-मण्डल की भाँति इनके मुख मण्डल की कान्ति फीकी पडगई है, विरह मे सूखकर शरीर काँटा होगया है, बस गाम्भीर्य की झलक मात्र ही शेष बचरही है, इसी से पहचाने जा सकते हैं। माता! मुझे सँभालना, यह हृदय-विदारक दृश्य नहीं देखा जाता॥

[तमसा से लिपट कर मूर्छित होती है]

त०—[सीता को साध कर] धैर्य्य धरो बेटी, बेटी धैर्य्य धरो—

[नेपथ्य में]

[इस पंचवटी के देखने से]

भीतर ही भीतर घुमड़ि, मोह-धुआँ
प्रथमहिं दुख-लौ उठन के, व्यापत ॥

रा०—[कुछ चेत में आकर आप ही आप] आहा, यह क्या है।
यह कल्पतरु-पल्लव मृदुलकी सुठि किधौं रस धार है।
किम्बा सुधाकर-किरन निचुरयो सुखद सुन्दर सार है॥
सतत जीवन-विटप हित के सघन घन बरषा भली।
सरजीवनी धौं मूरि यह जासों खिली मो हिय-कली॥११।

अवसि परसन यह वही कहुँ जासु परिचय मैं लह्यो।
सरल, सजीवन, विमोहन मंजु जो मन को रह्यो॥
सन्ताप मूर्छा प्रबल कों यह तुरत ही बिनसाइ कें।
आनन्द मय, कछु और मोहहिं देत तन उपजाइ कें॥१२॥

सी०—[भय और करुणा से कॉपती हुई पीछे उठकर के] अब मेरे लिए इतना ही बहुत है।

राम०—[बैठकर] क्या करुणामयी सीता देवी ने मेरे ऊपर अनुग्रह किया है।

सी०—[आप ही आप] हाय हाय, तो क्या अब आर्यपुत्र मुझे ढूँढेंगे।

रा०—सम्भव नहीं, तथापि मालूम तो ऐसा ही होता है।

सी०—भगवती तमसा, अब हमें यहाँ से दूर हो जाना चाहिये नहीं तो आज्ञा विना मुझे अपने पास देख महाराज कोप करेंगे।

त०—बेटी भगवती भागीरथी के वरदान से तुम्हें वन देवियाँ भी नहीं देख सकती, फिर रामचन्द्र जी देख लेंगे ऐसी शंका क्यों करती हो।

सी०—हाँ यही बात है।

सी०—[आप ही आप] यद्यपि निष्कारण अपने परित्याग किये जाने का तीर हृदय में खटकता है, तथापि प्राणनाथ के अगाध स्नेह भरे, सानन्द बरसाते हुए, ये वचन सुनकर मैं अपने जन्म को सार्थक समझती हूँ।

रा०—हाय, किन्तु प्रियतमा यहाँ कहाँ से आई, यह तो केवल प्रियाचिन्तन के निरतिशय अभ्यास से पैदा हुआ राम के मन का भ्रम मात्र है।

[नेपथ्य में]

[हा बड़ा अनर्थ हुआ ! हा बड़ा अनर्थ हुआ !!

जो जानकी कर कलित (पूर्वार्द्ध सुना जाता है)

रा० [करुणा और उत्कण्ठा से] सो उसका क्या हुआ ?

[फिर नेपथ्य में]

[क्रीडत करिनि सँग (उत्तरार्द्ध सुना जाता है)

सी०—[आप ही आप] हाय, उसको बचाने वाला कौन है किसे भेजूँ ?

रा०—कहाँ है वह दुरात्मा कहाँ है, जो स्ववधू के सँग क्रीड़ा करते हुए प्यारी के गज-शावक पर आक्रमण-करता है।

[ऐसा कहकर उठखड़े होते हैं]

[दूसरी ओर से भयातुर वासन्ती का प्रवश]

वा०—[आप ही आप] क्या महाराज रघुनाथ जी आये हैं।

सी०—[आप ही आप] क्या मेरी प्यारी सहेली वासन्ती है।

वा०—जय हो महाराज की जय हो।

रा०—[पहचान कर] क्या प्रिया की सखी वासती है।

वा०—महाराज, शीघ्र चलिये जटायुगिरि की शिखर से सीधे हाथ की ओर सीतातीर्थ के आगे गोदावरी में घुसकर देवी जानकी के पुत्र की रक्षा कीजिये।

सी०—[आप ही आप] हाय, तात जटायु, आज आपके बिना यह जनस्थान सूना सा लगता है।

रा०—[आप ही आप] हाय, वासन्ती के ये वाक्य तो बड़े ही मर्म-भेदी हैं।

वा०—इधर आइये महाराज, इधर।

सी०—भगवती तमसा! क्या सचमुच ही वनदेवियाँ भी मुझे नहीं देख सकतीं।

त०—अरी बेटी, मन्दाकिनी देवी का प्रताप सब देवताओं से बढ़ कर है, फिर तुम बार बार क्यों डरती हो।

सी०—तो चलो हम भी पीछे पीछे चलें।

[सब जाते हैं]

(स्थान—जनस्थान गोदावरी तट)

[एक ओर से राम और वासती का तथा दूसरी ओर से सीता और तमसा का प्रवेश]

रा०—[जाते हुए] भगवती गोदावरी! आपको नमस्कार है।

सी०—क्या कहा ? माता ! यही कि स्फुट नहीं है, मुझे तो बोल पहिचानने से लगा कि स्वय आर्यपुत्र ही बोल रहे हैं।

त०—सुना तो गया है कि —
जनस्था

सी०—धन्य

[झर-झ
गोदावरि
प्रिया सग
द्रुम मृग ह

सी०—वह तो
मण्डल की
पड़गई है, ि
गाम्भीर्य क
पहचाने जा
निवारक दृश्य

त०—[सीता की साथ

[इस पचवटी के
भीतर ही भीतर — , बाढ़ घुआ बेपीर ।
प्रथमाहिं दुख-लौ उठन के, व्यापत सकल सरीर ॥ ६ ॥

पृष्ठ-१२२—निनाद = शब्द । […]
देवताओं से प्राप्त हो और कठोर हो । अचला = पृथ्वी । वेद रत्नाकर = वेद रूपी समुद्र ।
पृष्ठ-१२३—पुण्यदर्शन = जिनका दर्शन पुण्य से मिलता है या जिनके दर्शन से पुण्य होता है ।
पृष्ठ-१२४—अवलम्बन = सहारा । रम्य = सुन्दर ।
पृष्ठ-१२५—विलच्छन = विचित्र (विलक्षण) । कमनाई = शोभा ।
अलोल = स्थिर ।
पृष्ठ-१२६—कटाच्छन = तिरछी चितवन । ठगोरी = वह निगाह जो मोहलेती है । युग्म = जोड़ा । द्योस = दिवस ।

[हाय प्यारी जानकी]

त०—[आप ही आप] इसकी तो गंगाजी को भी आशंका थी।

सी०—[नेपथ्य की वाणी सुन कर] हाय यह क्या होगया !

[फिर नेपथ्य में]

[हाय मेरी दण्डक वन की संगिनी ! हाय, प्यारी विदेह-नन्दिनी !]

[मूर्छित होकर गिरने का शब्द होता है]

सी०—हाय धिक्कार है ! मुझ अभागिनी का नाम लेते लेते निज नील-नीरज-नयनों को बन्द कर आर्यपुत्र अचेत होगये हैं, हाय पृथ्वी पर अधीर हो के कैसी अशरणा-वस्था में पड़े हुए हैं, भगवती तमसा रक्षा करो, किसी तरह इन्हें प्राण-दान दो।

(चरणों पर गिरती है)

त०—आप तुही कल्यानि उठि रामहिं चेत कराउ।
तुव प्रिय सुपरस करहि में, तिन जीवन सदुपाय ॥ १० ॥

सी०—चाहे जो कुछ हो, आपकी आज्ञा का अवश्य पालन करूँगी।

[शीघ्रता पूर्वक जाती है]

(स्थान—वनस्थान)

(साह्लाद साँस लेते तथा सजल नयन सीता से छुए जाते हुए राम-पृथ्वी पर पड़े दिखाई पड़ते हैं, तमसा खड़ी है)

सी०—[कुछ हर्ष से आप ही आप] मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि त्रिलोकनाथ को फिर चेत आया।

वा०—बधाई देती हूँ महाराज, यह सुन कर प्रसन्न हूजिये कि आपकी जानकी देवी का पुत्र स्ववधू सहित जीत गया।

रा०—चिरजीव, तुम्हारी विजय हो।

सी० –[आप ही आप] अरे यह तो इतना बडा हो गया !

रा० [आप ही आप] देवी तुम बडभागिनी हो।

नव कुज कामल, कलित-कलिकन मृदु दसन की कोर सों।
सुठि लवलि पल्लव लेतु जो तुव ललित कानन-खोर सों ॥
मद श्रवत बारन गन निजेता नवल नित यौवन-छयो।
अब तरुन-नेस-प्रमाद-भाजन पुत्र तुव प्यारी भयो ॥ १५ ॥

सी०—चिरजीव रहो बेटा, अपनी प्यारी हथिनी के साथ निरलर सुख भोगो।

रा०—देखो वासन्ती, बच्चे ने अपनी प्यारी के रिझाने मे कैसी निपुणता प्राप्त की है।

कौतुक सो तोरिके मृनाल पुज कोर-नकि,
कारिनी के मुख माहिं मजुल सवावै है।
फूले कज तिन सों सुबासित तडाग-नीर,
बीच बीच कारके कलुला, दौर प्यावै है।
लहकाइ सूँडि चारु अम्बुकन नियराइ,
जैसी मन चाहे वाहि वैसी ही न्हवावै है।
सरल सुनाल वारी नव नलिनी को पात
गाहिकै सप्रेम पुनि छत्तुरी लगावै है।

सी०—भगवती तमसा, जब यह इतना बड़ा हो गया है तो न जाने कुश लव कितने बड़े हुए होंगे।

त०—जैसा यह है वैसे ही होंगे।

सी०—हाय, ऐसी अभागिनी हूँ कि मैं न केवल आर्यपुत्र ही से किन्तु पुत्रों से भी अलग हूँ।

त०—भाग्य में ऐसा ही बदा था—

सी०—मैंने पुत्र जनके क्या किया जो छोटे छोटे विमल कोमल कान्तिमय, श्वेत दसनावली द्वारा दीप्त कपोल वाले निरंतर मधुर मनोहर मुसकराते हुए काकपक्ष [जुल्फें] लगाये मेरे पुत्रों के युगल मुख कमल का आर्यपुत्र ने अच्छे चुम्बन न किया।

त०—भगवान सब भली करेंगे।

सी०—भगवती तमसा, प्यारे पुत्रों का स्मरण करने से मेरे स्तनों में दूध भर आया है और उनके पिता के निकट-वर्ती होने से मैं क्षणमात्र के लिये ससारिणी हो गई हूँ।

त०—इसमें क्या कहना है, सन्तान तो स्नेहातिशय की परा काष्ठा तथा माता पिता के परस्पर अन्तःकरण का बन्धन है—

लाहि सनह अनुरूप, जबै दम्पति हिय पावन।
जुरत एक गुन आइ दुहूँ दिसि सों मन भावन।
नित आनन्द मय ग्रंथि अटल अनुपम जो प्यारी।
'नन्दन' कहियत सोइ सुभग सुन्दर सुख कारी॥ १७॥

वा०—बधाई देती हूँ महाराज, यह सुन कर प्रसन्न हूजिये कि आपकी जानकी देवी का पुत्र स्ववधू सहित जीत गया।

रा०—चिरजीव, तुम्हारी विजय हो।

सी० —[आप ही आप] अरे यह तो इतना बडा हो गया!

रा० —[आप ही आप] देवी तुम बडभागिनी हो—

नव कंज कोमल, कलित-कलिकन संग दसन की कोर सों।
सुठि लवलि पल्लव लेतु जो तुव ललित कानन-छोर सों॥
मद श्रवत बारन गन निजेता नवल नित यौवन-छयो।
अब तरुन-वैस-प्रमाद-भाजन पुत्र तुव प्यारी भयो॥ १५॥

सी०—चिरजीव रहो बेटा, अपनी प्यारी हथिनी के साथ निरंतर सुख भोगो।

रा०—देखो वासन्ती, बच्चे ने अपनी प्यारी के रिझाने में कैसी निपुणता प्राप्त की है।

कौतुक सों तोरिके मृनाल पुंज कोर-नाके,
करिनी के मुख माहिं मंजुल खवावै है।
फूले कंज तिन सों सुबासित तडाग-नीर,
बीच बीच करिके कलुला, दौर प्यावै है।
लहकाइ सूँडि चारु अम्बुकन बिथुराइ,
जैसी मन चाह याहि वैसी ही न्हवावै है।
सरल सुनाल बारी नव नलिनी को पात
गाहिके सप्रेम पुनि छतुरी लगावै है॥ १६॥

नव जोवन जोर उमग छया, निज नाचन में जिय उच्छव भारो।
चालि चाल मनोहर चारु कलोलत, लोल नई नई पाँखन वारो।
करि ऊचि सिखाऐं कुटुम्ब पे सोहत, मानो मनीन को मोर सँभारो।
जब नाचि चके तब कूक अलापत, लागे सिसू ये सखी पियारो।

सी०—[कौतुक से आँसू भर कर आप ही आप] वही है यह वही है।

रा०—आनन्द करो बेटा, आनन्द करो।

सी०—[आप ही आप] ऐसा ही हो।

रा०—तुअ ज्यों ज्यों भ्रम्यो फिरकैयनु लै

प्रिया भौंह चलाय सिहायों करी।

कछु मारि दृगंचल चंचल सी,

पुतरीन प्रवीन फिरायो करी।

सुत आज लखाई परयो जन सों

अबलों सुधि तेरी सतायो करी ॥१६॥

अहा पक्षियों को भी बड़ी पहचान रहती है—

बिरवा यह नीप को नीको लसै,

चहुँ चारु प्रसून कछूकन छायो।

निज हाथ लगाय प्रिया क उछाह

दै जल याहि

सी०—[देख व आँसू भर कर आप ही आप] इसे आर्यपुत्र ने खूब पहचाना–

रा०—*सिय की सुधि रासतु जानि परै,*
जिय में यह मार पहारी सुहायो।
नित या सग मान नतैती कछु,
तिहि पै करै आनि प्रमाद सवायो॥ २० ॥

वा०—महाराज यहाँ पर बैठिये—
यही दीसति चीकनी चोखी सिला,
कदली द्रुम सी चहुँ आरन छाइ।
सिय सग जहाँ तुम सोवत है,
बतरात निनोद भरे सुखपाई।
अरु बैठि जिन्हें तृन नूतन दै,
तुव प्यारी चरावत चारु सुहाइ।
अबलों मृग व चहुँ घेर रहैं,
कहुँ अत न बैठाति ताहि बिहाई॥ २२ ॥

रा०—अब तो यह देखा नहीं जाता [रोते हुए दूसरी जगह बैठते हैं]

सी०—[आप ही आप] सखी, वासन्ती ! इन्हें दिखाकर तुमने मेरी और आर्यपुत्र की यह क्या दशा करदी। हाय हाय यह वेही आर्यपुत्र हैं, वही पचवटी है, वही प्यारी सखी वासन्ती है, वही विविध स्वच्छन्द विहारों के साक्षी गोदावरी समीपवर्ती प्रदेश हैं, वेही प्राणों से प्यारे पुत्र के समान पाले पोपे तरु पक्षी मृग हैं, वही म

हूँ, पर हाय मुझ अभागिनी को दीखते हुए भी यह सब का सब सूना जान पडता है। हाय भाग्य के फेर से संसार में कैसा फेर हो गया है।

वा०—सखी सीता तुम कहाँ हो जो देखती भी नहीं कि राम की क्या दशा हो रही है।

नीलोत्पल दल सम नवल तन जासु सुन्दर साँवरो।
नयनोत्सव-प्रद, लखत रुचि सों नित नयो गुन आगरो।
अति सोच सों व्याकुल वही पारे पीयरो दुर्बल बन्यो।
जान्यो परत ना काउ विधि तउ लगत सुन्दरता-सन्यो ॥२२॥

सी०—[आप ही आप] देखती हूँ।

त०—देखती रहो, अपने प्रियतम को देखती रहो।

सी०—[आप ही आप] हा दैव, ये मेरे बिना, या मैं इनके बिना रहूँगी यह स्वप्न में भी किसे सम्भावना थी इस क्षण लो मानो दूसरे जन्म में इनका दर्शन मिला है इसलिये पल भर आँसू रोक कर अच्छी तरह प्यारे प्राणपुत्र को देख तो लूँ।

त०—[सप्रेम आँसू भर कर और सीता को छाती से लगा कर]

प्रिय दरस सुख अरु विरह-दुख सों, अश्रु अविरल ढारती
तिहि रूप-प्यासी विगत-अंजन, नयन निज निर्मतारती।
तुव मधुर मंजुल मुग्ध हेरनि, दुग्ध-सरि सम पावनी।
नृहि करति आसिंचन पिया को प्रनय रस सरसावनी ॥२३

वा०—मधु बरसावत विपिन द्रुम देहु सब,
फल औ फलनि के अरघ मन भाये हैं।
संग में आमोद खिल-कंजनु को लैके मंजु,
मोद सों पवन करौ बीजना सुहाये हैं। २५
चहकि चहूँधा पछी गाओ कल कंठनि सों,
बैतालिक जनु ताल के उमग छाये ह।
राजोचित सनमान साजो सबै क्यों तु आज,
महाराज राम पुनि याहि बन आये हैं ॥२४॥

रा०—सखी वासन्ती, आओ यहाँ बैठें।

वा०—[बैठकर आँसू भरकर] महाराज, कुमार लक्ष्मण तो अच्छे हैं।

रा०—[अनसुनी करके]

कर कमल सों दे नीर, औ नीवार नव तृन विधि भली।
पादप बिहँग कुरंग पोसे चाउ चित ज मैथिली।
तिन देखिके जिय सोच व्यापत अकथ अति दुरा की कथा।
हरि वज्रहिय कोऊ विदारनि, साल सालत सबथा ॥२५॥

वा०—महाराज ! मैं पूँछती हैं कुमार लक्ष्मण तो कुशल से हैं।

रा०—[आप ही आप] अरे, इस 'महाराज' के कहने में तो बड़ा व्याज स्तुति केवल स्नेह शून्य सम्बोधन है। जब लक्ष्मण की ही कुशल पूछने में इसका कण्ठ भर आया है और नेत्रों से नीर बहने लगा, इससे हो न हो, यह सीता का भी सब वृत्तान्त जान गई है [प्रगट] हाँ कुमार अच्छी तरह हैं।

और विशेष करके राम को तो यह संसार अनेक रूप से दुखदायी हो रहा है।

चित लगाय इत पालिबो, प्रजा नीति अनुकूल।
उत प्यारी-बिरही-तपनि, कुम्हिलानो जिय फूल॥
ताजि तिहिकों अब अपहि पुनि, करत विलाप बने न।
जियत अजहुँ,यहि सों प्रगट, रोदन निरफल है न॥२०॥

रा०—हाय बड़ा कष्ट है!

प्रिय-वियोग छाती फटै आवति पै न दरार।
काया तजै न चेतनहि, वेसाधि विकल अपार॥
जरति, कराति पै भसम ना दों लागी तन माहिं।
हृदय विदारत मिरत विधि, निरदय मारन नाहिं॥२१॥

सी०—प्रिय वियोग ऐसा ही होता है।
रा०—हे पुरवासियो!

जब राज मन्दिर में बसत सिय हा! तुम्हें भाई नहीं।
तृन सम तजी वन विजन में तउ मन तिया छाड़ै नहीं॥
तिह संग के इन वाम-थल ने विकल अब मोकों किया।
'यहि हेतु रोवन काज चाहत आज तव आयस लियो' ३२

असर नहिं लगि पसीजत क्यों न तुव पत्थर हियो।

त०—(आप ही आप) शोक-सागर का अति गम्भीर और बड़ा अनिवार्य भ्रमर है।

वा०—महाराज, बीती को बिसार कर धीरज धरना चाहिये।

रा०—सखी क्या कहती हो? धीरज!

बीत गये बारह बरस, बिन सीया सी बाम।
तासु नाम तक हू मिट्यो जियत तऊ यह राम ॥३३॥

सी०—आर्यपुत्र की इन बातों ने मुझे मोह लिया है।

त०—यथार्थ है बेटी—

प्रेम पुगे जासों परम, जिय की रुचि सरसात।
दारुन शोक समूह सनि, अति अप्रिय दरसात॥
तेरे पिय के ये बचन, मृदु कटु जुगल अपार।
का नाहिं ढारत तव हिय अमिय गरल की धार ॥३४॥

रा०—सखी वासन्ती,

तीरा मनु तिरछी अनी, नरकी की बिसलीन।
त्यों हिय गाढ़ी साक की, मेरे बिथा सही न ॥३५॥

सी०—(आप ही आप) मैं ऐसी मन्दभागिनी हूँ कि जिस के कारण बारम्बार आर्यपुत्र को दुख होता है।

रा०—बड़ी धीरता पूर्वक अपने हृदय को थाम लेने पर परिचित अनेक प्रिय पदार्थों के देखने से दुख आज फिर अनिवार्य हो गया है।

छुभित विचल सोक की, हिय में उठति हिलोर।
रोकन तिहि कैसेउ किये, जो जो जतन कठोर ॥
छायो चित्त विकार, तिनहूँ तोरि अकथित कोऊ।
हरत प्रबल जलधार, जिमि दृढ सिकता सेतुकों ॥३६॥

सी०—(आप ही आप) आर्यपुत्र का ऐसा दुर्निवार्य दुस्सह दु खावेग देखकर मेरा हृदय भी इस समय अपना दु ख भूल कुछ जडित स्तभित सा हो गया है।

वा०—(आप ही आप) महाराज की बडी शोचनीय अवस्था हो गई है किसी दूसरी ओर चित्त बटाना चाहिये (प्रगट) हे देव, अब चिरपरिचित जनस्थान के भागों को देख कर अपना मनोरञ्जन कीजिये।

रा०—अच्छा, यही करें।

सी०—(आप ही आप) सखी जिन्हें मनोविनोद का उपाय समझती है वे उलटे और दु ख की आग भडकाने वाले हैं।

वा०—(करुणा से) हे नाथ,

याही लता-गृह तुम प्रिया की बाट हेरी, जो घनी।
गोदावरी तट निरखि हसनि, ठिठकि रही कौतुकसनी ॥
आवत, कछुक तुव मलिन मन लखि, जीय-कातर मैथिली।
जोरी जुगल कर कलित कोमल कमल कुडमल अजली३७

सी०—(आप ही आप) सखी, तुम्हारा हृदय बड़ा कठोर है जो तुम हृदय में लगे मर्मभेदी शोक शल्यों को बार बार कुरेद कर मुझ मन्दभागिनी तथा आर्य पुत्र को व्यथित करती हो।

रा०—हे कठोर हृदय जानकी, इन दृश्यों के देखने से यह लगता है कि तुम यहीं कहीं विचर रही हो, फिर मुझ अभागे पर दया न करने का क्या कारण है —

हा हा प्यारी फटत हृदय यह जगत् सून्य दरसावै।
तन-बन्धन सब भये सिथिल से अन्तर-ज्वाल जरावै॥
तो बिन जनु डूबत जिय तम में, छिन छिन धीरज छीजै।
मोहावृत सब ओर राम यह, मन्द भाग्य का कीजै॥३८॥

(मूर्छित होते हैं)

सी०—हाय हाय आर्य पुत्र फिर बेसुध हो गये।

वा०—धीरज धरो महाराज, धीरज धरो।

सी०—(आप ही आप) हा, आर्य पुत्र केवल मुझ अभागिनी के लिये समस्त संसार के मंगलाधार रूप आपका जीवन प्रतिक्षण दारुण सशयावस्था में पड़ रहा है, इससे बड़ी भारी विपत्ति की आशंका उपस्थित हुई है। हाय, अब मैं क्या करूँ।

त०—बेटी, घबड़ाने का काम नहीं है रामचन्द्र का पुनर्जीवन तुम्हारे ही पाणि पल्लव के स्पर्श से होगा।

रा०—(आप ही आप) क्या अभीतक चेत नहीं हुआ ! हाय प्यारी सखी माता तुम कहाँ हो ! अपने प्राणेश्वर की रक्षा करो।

सी०—(शाघ्रता से पास जाकर राम का हृस्थ और ललाट छूती है)

रा०—अहा रामचन्द्र को फिर चेत लौट आया !

रा०—मनहु-अमिय मय लेपसों, लेपत परम सुहातु।
सबै भीतरी बाहरी, मो सरीर की घातु॥
औचकही प्रिय परस यह, पुनरपि आनहिं लाय।
और कछ विधि को सुखद, देत मोह उपजाय ॥३६॥

(आनन्द से गद् गद् करके) सखी वासन्ती, फिर भाग्य उदय हुआ है।

वा०—कैसे महाराज ?

रा०—सखी कैसे क्या ? जानकी फिर प्राप्त होगई है।

वा०—सो कहाँ हैं महाराज ?

रा०—(स्पर्श-सुखानुभव करते हुए) देखो यही तो है आगे।

वा०—महाराज, इन अपने मर्मभेदी दारुण प्रलापों से मुझ अभागिनी को क्यों दुखित करते हो, मैं तो आप ही सखी के दुख में जलरही हूँ।

सी०—(आप ही आप) मैं अब हटना चाहती हूँ किन्तु अविचल अनुरागभरे, प्राणनाथ के सुखद, शीतल, दीर्घ, दारुण सन्ताप-हरण, स्पर्श से पसीज कर काँपता हुआ यह मेरा हाथ जहाँ का तहाँ जडीभूत होकर ऐसा विवश होगया है, मानो किसी वज्र लेप से जुड गया हो।

रा०—सखी, इस में थाहे का प्रलाप है।

ब्याह समय जो गह्यो मुदित-मन प्रथमहिं कङ्कन-धारा।
चिरपरिचित जिह सुलभ सुधासी परसनि परम पियारी॥

सी०—(आप ही आप) आर्यपुत्र, अभीतक आप यहीं हैं।

रा०—हिम सम सीतल हीतल सुख-प्रद मृदुल मंजु मन भायो।
लगत वही कर लखौ, लालित जिन लवली दलहि लजायो॥४०

(थामा चाहकर पकड़ते हैं)

सी०—(आप ही आप) हाय हाय, प्राणपति के प्रियस्पर्श से मोहित होकर मुझ से चूक हो गई।

रा०—सखी वासन्ती, आनन्द के मारे मेरी इन्द्रियाँ अपने अपने कर्तव्य पालन में शिथिल सी हो गई हैं, मेरे बसकी बात नहीं रही है, इससे थोड़ी देर तक इनके हाथ को तुम्हीं थामे रहो।

वा०—(आप ही आप) हाय हाय, इन्हें तो उन्माद हो गया।

(सीता जल्दी से हाथ छुड़ाकर दूर हो जाती है)

रा०—हाय अनर्थ हो गया—

मो जड़ कम्पित स्वेद-मय, कर सन मन मुद दानि।
छिटकि परयो कित जड़ कपत, तासु पसीजित पानि॥४१॥

सी०—[आप ही आप] हा, अभी इनकी निगाह ठीक नहीं हुई है, ठीक ठीक वस्तु पहचानने में असमर्थ तथा चकराती सी मालूम होती है—इससे जाना जाता है कि आर्यपुत्र अभी अपने आपे मे नही आये।

त०—[स्नेह से देख कर आप ही आप]

श्रम-सीकर-कन सों छयी, काँपति औ पलकाति।
प्रिय-तन-परस उमग सों, बैठी अस दरसाति॥
जनु चलि चचल पवन बस, घन बूँदन के भार।
मुकुलित कलित कदम्बकी, चलित डहडही डार॥४२॥

सी०—[आप ही आप] अरे, अपने आप पर अधिकार न रहने से मुझे तमसा जी के सामने लज्जित होना पड़ा, अपने मन में भला यह क्या कहेगी कि कहाँ तो राम द्वारा इनका ऐसा परित्याग, और कहाँ उन पर इन के हृदय का ऐसा अनुराग।

रा०—[सब ओर देख कर] क्या यथार्थ मे नहीं है, हाय वैदेही तुम बड़ी निठुर हो ?

सी०—[आप ही आप] सचमुच मैं बड़ी निठुर हूँ, जो प्राणनाथ, तुम्हें ऐसी दशा में देख कर भी प्राण धारण करती हूँ।

रा०—देवी ! कुछ तो पसीजो, मुझे ऐसी दशा मे परित्याग करना तुम्हारे लिये योग्य नहीं है।

सी०—[आप ही आप] आर्यपुत्र, यह तो आप विपरीत कह रहे हो।

वा०—महाराज, धीरज धरिये, अपनी असाधारण धीरता को काम में लाकर गहरी वियोग-विथा में डूबे हुए अपने आपको सम्हाले रहिये—भला यहाँ मेरी प्यारी सखी कहाँ !

रा०—[आप ही आप] व्यक्त रूप में जानकी नहीं है, होती तो क्या वासन्ती न देखती, तो क्या यह स्वप्न हुआ ! रामचन्द्र के नैनों मे निगोडी नींद कहाँ, जो स्वप्न हो। बस, प्यारी से मिलने का जो निरन्तर ध्यान बना रहता है उसी से पैदा हुआ निःसन्देह यह विकट उन्माद है जो मुझे अनेक कल्पनाओं मे डाल कर बार बार सताता रहता है।

सी०—आर्यपुत्र की इस दशा का कारण मैं ही वज्र हृदय वाली हूँ।

वा०—महाराज,

दसकध को यह गृद्ध-नामित लोहमय रथ देखिये।
पुनि तासु खर-भीषन बदन कर आस्थि अब अवरोखिये॥
तिह-पख हनि, रिपु लेगयो नभ पथ सों तुव भामिनी।
अति बिलबिलाती बिवस पल पल दमकि,जनु घन दामिनी*॥४३।

सी०—[भय से आप ही आप] आर्य पुत्र, तात जटायु को यह दुष्ट मारे डालता है और मुझे भी हरे लिये जाता है, आइये आइये शीघ्र बचाइये।

रा०—[शीघ्र उठ कर आप ही आप] महात्मा जटायु के प्राण को और सीता को हरने वाले अरे पापी ! खडा तो रह, कहाँ जाता है !

वा०—हे देव, राक्षसकुल धूमकेतु, अभी तक आपका क्रोध ठडा नहीं हुआ है।

सी०—(आप ही आप) हाय मैं भी पागल हो गई हूँ।

रा०—यथार्थ में अब के तो यह प्रलाप ही है।

---

* पल पल विकल दमकति विपुल जनु नवल घन में दामिनी।

अनुकूल-सुन्दर-जतन-मय, नित-विरह-दुख अपनाद में।
बहु धीर-नासन-जनित अदभुतरस वीर भाव-विनोद में॥
आविदित-बिथा कर, सिय-बिरह, तब शत्रुदल-बध लौं रह्यो।
अबको बियोग अथाह निरवधि जाइ कहु का बिधि सह्यो ॥४॥

सी०—(आप ही आप) यह निरवधि है तो हाय अब मेरे प्राण कैसे रहेंगे?

रा०—(आप ही आप) हाय क्या करूँ—

जहाँ कपिराज सुगरीव मित्रता बिफल,
बेअरथ दल बल बानर को भारी है।
कछु न प्रभजन-कुमार की चलति जहाँ,
जामवान हू की बुधि थकित बिचारी है।
पथ न बनाय सकै बिसकरमा को पूत—
नल, जिह ठाम को, अकृत बलधारी है।
गति न लछिन-वीर बानन् ने जानी तहा,
कहाँ जाय तू समानी हाय प्राणप्यारी है ॥५॥

सी०—(आप ही आप) इससे तो पहिला ही वियोग अच्छा रहा।

रा०—सखी वासन्ती, अब जैसे जैसे प्रिय पदार्थों का दर्शन होगा वैसे वैसे रामका कष्ट बढ़ता ही जायगा, मेरे लिये तुम कब तक रुदन करोगी। हाय, मैं ऐसा अभागा हूँ कि मेरा मिलना सुहृदों को भी दुःख पहुँचाता है इससे मुझे अब जाने दो।

सी०—(मोह और उद्वेग से तमसा के गले लग कर) तो क्या आर्यपुत्र अब चले ही जायँगे।

त०—बेटी इन्हें सँभालो, हमें भी तो चिरंजीव कुश लव की वर्षगाँठ का उत्सव करने भगवती भागीरथी के समीप जाना है।

सी०—माता, कुछ तो दया करके ठहरिये और क्षण भर मुझे इनके दर्शन कर लेने दीजिये-हाय, फिर मिलना कहाँ।

रा०—अश्वमेध यज्ञ के लिये मेरी भी एक सह धर्म चारिणी—

सी०—(घबरा कर आप ही आप) वह कौन है आर्यपुत्र ?

रा०—सीता की सुवर्णमयी मूर्त्ति है।

सी०—(आप ही आप) यथार्थ में आप स्वनाम धन्य आर्यपुत्र ही हैं, उस परित्यागमयी लाज का काँटा अब मेरे हृदय से दूर हुआ।

रा०—उसी के दर्शन से शोकाश्रु बहाते हुए इन नयनों को शीतल करूँगा।

सी०—(तमसा से) वह धन्य है जिसका आर्यपुत्र इतना आदर करते हैं और जो इनका मनोविनोद कर संसार की सब सुमंगल आशाओं की आश्रय बनी है।

त०—[मुसकराती हुई स्नेह से सीता को गले लगा कर] बेटी, इस में तो तुम अपनी ही बड़ाई करती हो।

सी०—[लज्जा से नीचा मुख करके आपही आप] भगवती तमसा से मैंने अपनी हँसी कराई।

वा०—इस समागम से आपको बड़ा कष्ट हुआ, मैं ही इस शोकोद्दीपन का कारण हुई—और जाने के लिये, जिसमें आपके कार्य की हानि न हो वैसा ही कीजिये।

सी०—[आप ही आप] वासन्ती ही मेरी वैरिन होगई।

त०—आओ बेटी चलें।

सी०—[कष्ट से] जो आज्ञा।

बरसन के प्यासे अहे, पिया दरस में नैन।
बडे बडे बहु जतन करि, टारे सोहु टरै न ॥४६॥

सी०—अपूर्व पुण्यों से प्राप्त हुए आर्यपुत्र के चरण कमलों में बारम्बार अनेक प्रणाम हैं।

[मूर्छित होती है]

त०—बेटी धीरज धरो धीरज धरो।

सी०—[सावधान होकर] हाय, मेघाछन्न पूर्ण चन्द्रमा की भाँति प्राणनाथ के मुखचन्द्र का दर्शन दुर्लभ सा हो गया।

त०—कार्य कारण के भाव मे भी बडी विचित्रता है—

एक करुण ही मुख्यरस, निमत भेदसों सोइ।
पृथक पृथक परिणाम में, भासत बहु बिधि होइ।
बुदबुद, भँवर, तरंग जिमि होत प्रतीत अनेक।
पै यथार्थ में सबनि को, हेतु रूप जल एक ॥४७॥

ग०—विमानराज, यहाँ आइये।

[सब उठते हैं]

त० और वा०—[सीता और राम की ओर देख कर]

अब हम सबनि के सहित जननी-अवनि अरु मन्दाकिनी।
रवि, बालमीकि महामुनी, जिन प्रथमही कविता भनी॥
अति शिष्ट देव वशिष्ठ, सह सहधर्मिनी, सब दुख हरै।
कल्यान मान प्रदान मय सब भाँति तुव मंगल करैं ॥४८॥

अंक ४

अथ विष्कम्भक

[दो तपस्वियों का प्रवेश]

एक—सौधातकी, देखो, आज अनेक अतिथियों के आने तथा उनके सत्कारार्थ यथोचित सामिग्री उपस्थित होने से भगवान वाल्मीक जी का आश्रम कैसा रमणीय लगता है, अहा !

चामर समा के तिन गुनगुनों नीको मॉड,
मृग निज हाल ब्यानी हिरनी को प्यावे है ।
ताके पीवन सों ज्यादा बचिके रह्यो जो ताहि,
स्वाद स्वाद पीवत अघाय हुलसावे है ।
घीउ मिलि भात रँध्यो, ताकी सुठि सोंधी सोंधी,
मजुल महँक महँकत हिय भावे है ।
बेर बेर बेर फल मिले साग की सुगन्धि,
धाइ धाइ सरसाई सब ओर छावे है ॥ १ ॥

सौ०—इन बुड्ढे डढ़ियलों के आने से आज का पढ़ना लिखना तो हो चुका ।

प्र०—क्या कहना है मित्र, गुरुजनों के साथ तुम्हारा यह अपूर्व शिष्टाचार सराहनीय है ।

सौ०—अरे भाण्डायन, इस अतिथि का क्या नाम है जो सब वृद्ध और बुढ़ियाओं में मुखिया सा मालूम होता है ।

भा०—धिक मूर्ख, क्या व्यर्थ हँसी उडाता है जानता नहीं कि शृंगीऋषि के आश्रम मे अरुन्धती के साथ, महाराज दशरथ की रानी को लेकर महाराज वशिष्ठ आये हैं, फिर वृथा इस प्रकार क्यो बकता है।

सौ०— हूँ! तो वशिष्ठ आये हैं।

भा०—और नहीं तो क्या समझना था।

सौ०—मैंने तो समझा कि कोई व्याघ्र या भेडिया आया है।

भा०—अरे, जीभ सँभाल, यह क्या कहता है!

सौ०—अजी आते ही उसने एक विचारी बछिया की भेंट ली।

भा०—वेद में समास मधुपर्क देना लिखा है, इस को प्रमाण करने वाले बहुतेरे गृहस्थ लोग श्रोत्रिय अभ्यागत को गोवत्सरी या महोक्ष अथवा महाज भेंट करते हैं, धर्म सूत्रकारों का भी यही मत है।

सौ०—तब तो मेरी ही बन पडी।

भा०—कैसे ?

सौ०—क्यों कि जब राजा जनक आये तो वाल्मीकि जी ने दही और मधु ही का मधु पर्क दिया, बछिया रहने दी।

भा०—प्रवृत्ति मार्ग वालों के लिये ऋषियो का यह नियम है। महाराज जनक तो निवृत्ति मार्ग में हैं।

सौ०—सो किस प्रकार ?

भा०—जब से उन्होंने सीता देवी का सापवाद परित्याग सुना है तभी से वाणप्रस्थाश्रम स्वीकार कर लिया है। चन्द्रद्वीप तपोवन में तप करते करते उनको तो कई वर्ष बीत गये।

सौ०—तो यहाँ कैसे आये हैं ?

भा० अपने पुराने मित्र वाल्मीकि जी के दर्शन करने।

सौ०—ममधिन में उनकी भेंट यहाँ हुई या नहीं ?

भा०—अभी हाल वशिष्ठजी की आज्ञा से श्रीअरुन्धती कौशिल्या रानी के पास यह कहने गयी हैं, कि उन्हें अपने आप जाकर मिथिलेशराज से भेंट करनी चाहिये।

सौ०—जब तक ये बड़े बूढ़े आपस में मिलें, तब तक हम भी क्यों न विद्यार्थियों के साथ खेल कूद कर आज की छुट्टी मनावें।

[दोनों निकलते हुए]

भा०—देखो, वह पुराने वेद पारगत राजर्षि जनक यहीं हैं जो भगवान वाल्मीकि और वशिष्ठजी से मिलकर यहाँ आश्रम के बाहर वृक्ष की जड़ पर बैठे हुए हैं।

झाँकर की सी तन बदन, जाके दिन अरु रैन।
सीय सोच की दौं लगी, सुलगत चैन परै न ॥ २ ॥

[जाते हैं]

॥ इति विष्कम्भक ॥

ज०—*सोचतु सुता की विषम बिपता सदन में जिहि काल।*
हिय होत हा! घायल बड़ो, बाढ़ै बिथा बिकराल।
बीते दिना बहु, तउ उलहि मम सोक कोध बिसाल।
चलि जीय पै जनु तीन आरा नित्य सालत साल ॥ ३ ॥

हाय, यह दारुण दुःख मुझ से सहा नहीं जाता। इधर वृद्ध तो अवस्था और असह्यविपता की विथा घेरे हुए उधर पराक सान्तिपन आदि निरन्न निर्जल व्रत करने से गाँठ का रक्त माँस भी सूख गया, किसी काम का रहा नहीं,

भा०—धिक् मूर्ख, क्या व्यर्थ हँसी उडाता है जानता नहीं कि शृंगीऋषि के आश्रम से अरुन्धती के साथ, महाराज दशरथ की रानी को लेकर महाराज वशिष्ठ आये हैं, फिर क्या इस प्रकार क्यों बकता है।

सौ०— हूँ ! तो वशिष्ठ आये हैं।

भा०—और नहीं तो क्या समझता था।

सौ०—मैंने तो समझा कि कोई व्याघ्र या भेडिया आया है।

भा०—अरे जीभ सँभाल, यह क्या कहता है।

सौ०—अजी आते ही उसने एक विचारी बछिया की भेंट ली।

भा०—वेद में समास मधुपर्क देना लिखा है, इस को प्रमाण करने वाले बहुतेरे गृहस्थ लोग श्रोत्रिय अभ्यागत को गोवत्सरी या महोक्ष अथवा महाज भेंट करते हैं, धर्म-सूत्रकारों का भी यही मत है।

सौ०—तब तो मेरी ही बन पडी।

भा०—कैसे ?

सौ०—क्यो कि जब राजा जनक आये तो वाल्मीकि जी ने दही और मधु ही का मधु पर्क दिया, बछिया रहने दी।

भा०—प्रवृत्ति मार्ग वालों के लिये ऋषियों का यह नियम है। महाराज जनक तो निवृत्ति मार्ग में है।

सौ०—सो किस प्रकार ?

भा०—जब से उन्होंने सीता देवी का सापवाद परित्याग सुना है तभी से वाणप्रस्थाश्रम स्वीकार कर लिया है। चन्द्रद्वीप तपोवन में तप करते करते उनको तो कई वर्ष बीत गये।

सौ०—तो यहाँ कैसे आये हैं ?

भा०—अपने पुराने मित्र वाल्मीकि जी के दर्शन करने।

[ठहर कर] फिर महारानी किसे कहा [अच्छी तरह देख कर] हाय, क्या यह महाराज दशरथ की धर्मपत्नी प्यारी सखी कौशिल्या है ? अब इन्हें देख कर कौन विश्वास करेगा कि यह वही हैं।

कमला सरिस कमनीय अति, दसरथ भवन में जो लसी।
पद 'सरिस' योजन नहिं उचित, साच्छात् श्री कमलावती।
बिधि बाम बस अति बिपति लहि, यह हाय कौसिल्या वही।
जिय-सोच की मारी लगे अब, और की कछु और ही ॥ ६ ॥

यह और एक दूसरा कुदशा का फल है।

जो हित जिह दरसन रह्यो, नित उच्छव को भौन।
अति असह्य सोई लगे, मनहु जरे पै लोन ॥ ७ ॥

[अरुन्धती कौशिल्या तथा कञ्चुकी का प्रवेश]

अ०— मेरा तो यही कहना है कि आप स्वयं चलकर विदेह राज से मिलें और यही तुम्हारे कुलगुरु की आज्ञा है, इसीलिये मुझे आपके पास भेजा है फिर पद पद पर आपके आशंकित होने का क्या कारण है।

क०— देवी, मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने को सँभाल कर भगवान वशिष्ठजी की आज्ञा का पालन करें।

कौ०— यह सोच कर कि मुझे अभी मिथलाधिपति से भेंट करनी है मेरे सब दुःख एक साथ उमड़े आते हैं शोकाकुल हृदय को सँभालना कठिन हो गया है।

अ०— इसमें क्या सन्देह है।

इस पर भी यह शरीर नहीं छूटता। आत्मघात करके भी छुटकारा कहाँ? क्योंकि ऋषियों के कथनानुसार आत्मघाती को अन्धतामिस्रादि घोर नरक भोगने पड़ते हैं। बरसों हो गये फिर भी जैसे जैसे सोचता हूँ, मेरा दुःख घटने के बदले प्रतिक्षण और भी उग्र रूप धारण करता ही जाता है, इसके शान्त होने का लक्षण कोई भी नहीं दिखाई देता। हाय क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, हाय बेटी सीता! जगन्माता वसुन्धरा के पवित्र गर्भ से तो तू जन्मी, किन्तु न जाने क्या ऐसा भाग्य मे लिखा लाई जिसका यह परिणाम हुआ। हा! इसी लाज के मारे मैं जी खोल कर रो भी नही सकता हाय बेटी, हाय!!

छिनक रोवत पुनि हँसत बिनु हेतु, चमकावत भली।
कोमल कली ज्यों कुन्दकी कल कढ़त निज दसनावली।।
तुतरात काहि कछु की कछू मंजुल मधुर बातें घनी।
सिसु भाव के तुव कजमुख की अजहुँ मो कहँ सुधिबनी।। ४।।

भगवती अचला, सचमुच तुम बड़ी कठोर हो।

जिह गंग, अग्नि, अरुन्धती, तुमसह महातम जानहीं।
रघुवंस-गुरु-रवि आपु जा सन निज प्रतिष्ठा मानहीं।।
अस वाक-विद्या सम जनी तुव देखते पावन भई।
निज ता सुता की बिपति तोसों कहु सही कैसे गई।। ५।।

[नेपथ्य में]

[इधर आइये भगवती और महारानी आप भी इधर आइये]

ज०—[देख कर] यह तो कंचुकी के पीछे पीछे भगवती अरुन्धती आती हैं।

क०—[आप ही आप] आज तो सचमुच ही हम सब को लज्जित होना पड़ा, देखिये 'प्रजापाल' शब्द इन्होंने किस व्यंग के साथ कहा है। [प्रगट] हे राजर्षि, सीता के परित्यागरूपी शोकोत्ताप से जलती हुई तथा रामचन्द्र मुखचन्द्र के वियोग में महा दुखित महारानी को ऐसे क्रोध सहित वचन बाणों द्वारा व्यथित करना तुम्हें उचित नहीं है। यह दुर्भाग्य का ही कारण समझिये, जो रामचन्द्र जी से ऐसा अनर्थ बन पड़ा। क्या करें नगरवासी सीता की अग्नि परीक्षा में अविश्वास रख, बेसिरपैर की बातें उड़ा कर महाराज की अपकीर्ति फैलाते थे।

ज०—अरे हमारी सन्तान को शुद्ध करने वाला अग्नि कौन होता है, हाय ! हाय !! इन निर्लज्ज बकवादियों का ऐसा कहना ! राम की नहीं किन्तु हमारी भी बड़ी अप्रतिष्ठा का कारण हुआ।

अ०—[साँस भरकर] निस्सन्देह अग्नि का नाम लेना तो बेटी की निन्दा करना है, सीता ही कहना पर्याप्त है—अग्नि उसे क्या शुद्ध करेगा ! उसके समान पहिले आप तो शुद्ध हो ले। हाय, बेटी—

सिसु होहु अथवा सिष्य मेरी ओर इक जाको घुरी।
किन्तु लखि, तुव सुद्धता अति प्रेम तोमें भा खरी।
परु होउ नारी वा कुमारी पूज्य तू जग की अहै।
केवल गुनी को गुन पूजत नाहिं रूप अरु नाहिं बैस है ॥११॥

कौ०—हाय मेरा दुःख बढ़ता ही जाता है।

[व्याकुल हो कर गिर पड़ता है]

प्रिय वियोग तरग हिये उठै ।
दुख न जासु घटै छिन एकहू ॥
स्वजन कों लखिकें उमडे सदा ।
सहस धारनं सों द्रुत धाय के ॥ ८ ॥

कौ०—हाय प्यारी बहू की यह दशा होगई, अब राजर्षि को अपना मुख कैसे दिखाऊँ !

अ०—*निमिकुल-कमल-दिनेस यह, तुम समधी मिथिलेस ।*
याज्ञवल्कि जिह हित दिया, बिमल ब्रह्म उपदेस ॥ ९ ॥

कौ०—यही महाराज के प्यारे मित्र तथा बहू जानकी के पिता राजर्षि जनक हैं, हाय मैं इनमे ऐसे अमंगल समय पर मिली जब कि उनमें से एक भी नहीं है ।

ज०—[आगे बढ़ कर] भगवती अरुन्धती, मै सीरध्वज विदेह आपको प्रणाम करता हूँ ।

सुरापि मधि जो मुकटमनि, तप-तेज निधि जिन सम नहीं,
सो गुरु वशिष्ठहु तुमनि सों, कृतकृत्य अपु कों मानहीं ।
मंगलकरनि तिहुँ लोक की, जगवन्दनी सद्गुनवती,
सांचि प्रात-श्री सम तोहि, सिर निज नाइ बन्दौं भगवती ॥१०॥

अ०—आपके हृदय में परम ज्योति स्वरूप ब्रह्म का प्रकाश हो, और रजोगुण मे परे विशुद्ध सत्त्व गुण रूप तेजोमय सूर्य देव तुम्हें पवित्र करें ।

ज०—आर्य गृष्टि प्रजा के पालन करने वाले महाराज की माता कुशल मे हैं ।

क०—[आप ही आप] आज तो सचमुच ही हम सब को लज्जित होना पड़ा, देखिये 'प्रजापाल' शब्द इन्होंने किस व्यंग के साथ कहा है। [प्रगट] हे राजर्षि, सीता के परित्यागरूपी शोकोत्ताप में जलती हुई तथा रामचन्द्र सुतचन्द्र के वियोग में महा दुःखित महारानी को ऐसे क्रोध मलिन्य वचन वाणों द्वारा व्यथित करना तुम्हें उचित नहीं है। यह दुर्भाग्य का ही कारण समझिये, जो रामचन्द्र जी से ऐसा अनर्थ बन पड़ा। क्या करें नगरवासी सीता की अग्नि परीक्षा में अविश्वास रख, बेसिरपैर की बात उड़ा कर महाराज की अपकीर्ति फैलाते थे।

ज०—अरे हमारी सन्तान को शुद्ध करने वाला अग्नि कौन होता है, हाय ! हाय !! इन निर्लज्ज बकवादियों का ऐसा कहना ! राम की नहीं किन्तु हमारी भी बड़ी अप्रतिष्ठा का कारण हुआ।

अ०—[साँस भरकर] निस्सन्देह अग्नि का नाम लेना तो बेटी की निन्दा करना है, सीता ही कहना पर्याप्त है—अग्नि उसे क्या शुद्ध करेगा ! उसके समान पहिले आप तो शुद्ध हो ले। हाय, बेटी—

सिसु होहु अथवा सिष्य मरी ओर इक जाको धुरो।
किन्तु लनि, तुव सुद्धता अति प्रेम तोमें मा सरो।
घर होउ नारी वा कुमारी पूज्य तू जग की अहै।
केवल गुनी को गुन पुजत नाहिं रूप अरु नाहिं बैस है ॥११॥

कौ०—हाय मेरा हृदय फटता ही जाता है।
[मुर्छा हो कर गिर पड़ता है]

ज०—हाय हाय यह क्या हुआ।

अ०—राजर्षि, हैं क्या!

नृप-अछत सिसुजन सग सुखमय उन दिनन की सुधि धरी।
निरखत सनेही तुमहि, अब सो आइ कसकी याहि घरी।
ऐसी दसा लहि तुव सखी यह अति बिमूढ़ लखात है।
जिय कमल कोमल कुल तियन को नेक में कुम्हिलात है॥१२॥

ज०—अरे हाय, मैं ऐसा अभागा जनमा हूँ, कि इतने दिन पीछे मिलने पर भी अपने प्यारे मित्र की रानी को प्रेमपूर्वक नहीं देख सकता!

प्रिय, अभिन्न-उर, पूज्य, सुहृद, समधी, हितकारी।
तनधारी-आनन्द अखिल-जीवन-फलधारी।
यह तन अथवा जीउ अधिक इनसों वा प्रियतम।
रहे न का महाराज अटल प्रन श्रीदसरथ मम॥१३॥

हाय हाय! यही वह कौशिल्या है—

यदि भई अनबन कबहुँ इनकी कान्त सों एकान्त में।
निज निज अपार उराहनो दम्पति दियो मोहि तिहि अन्त में।
नित प्यार में वा कोप में मध्यस्थ दोउन को रह्यो।
बस तासु सुधि दाहति हृदय अब जात नहिं यह दुख सह्यो॥१४॥

अ०—हाय, बहुत देर से इनकी साँस नहीं चलती और हृदय धड़कना भी बन्द होगया है।

ज०—हाय प्यारी सखी।

[कमण्डल से हाथ में जल लेकर छिड़कते हैं]

सुहृद तुल्य दिखाय दयामयी,
प्रथम पूर्ण सदा अनुकूलता।
बनि महा पुनि दारुन क्यों विध,
अब करै मनमें अति वेदना ॥१५॥

कौ०—[चेत में आकर] हाय बेटी जानकी तू कहाँ है विवाह सस्कार की उमग मे रमणीय निर्मल मधुर मुसक्यान भरे, तेरे मनोहर भोले भाले प्रफुल्लित मुख कमल का अभी तक मुझे स्मरण बना हुआ है। आ बेटी, विलसितचन्द्र-चन्द्रिका के समान, अपने कोमल कमनीय शीतल शरीर से छटा छिटकाती हुई मेरी गोद की शोभा बढा। महाराज सदा यही कहा करते थे कि यह जानकी परम पूज्य रघुवंशियो की वधू है किन्तु हमारी तो फिर भी जनक के सम्बन्ध से बेटी ही लगती है।

क०—ऐसा ही था महारानी, ठीक है।

सोहै महीप सुत चार सुरूप प्यारे।
श्री राम किन्तु सब सोंहि विशेष प्यारे॥
त्योंही बधूनि मधि श्री मिथिलाकुमारी।
शान्ता सता सम रही नृप की दुलारी ॥१६॥

ज०—हाय प्यारे सुहृद दशरथ महाराज तुम ऐसे ही थे तुम को कोई कैसे भूल सकता है।

पूजत कन्या पच्छ के बर पच्छहिं यह रीति।
किन्तु रह्यो मैं पूज्य तव, नाते सों बिपरीति॥

ज०—हाय हाय यह क्या हुआ।

अ०—राजर्षि, हें क्या !

नृप-अछत सिसुजन सग सुखमय उन दिनन की सुधि धरी।
निरखत सनेही तुमहि, अब सो आइ कसकी याहि घरी।
ऐसी दसा लहि तुव सखी यह अति बिमूढ लखात है।
जिय कमल कोमल कुल तियन को नैक में कुम्हिलात है ॥१२॥

ज०—अरे हाय, मैं ऐसा अभागा जनमा हूँ, कि इतने दिन पीछे मिलने पर भी अपने प्यारे मित्र की रानी को प्रेमपूर्वक नही देख सकता !

प्रिय, अभिष-उर, पूज्य, सुहृद, समधी, हितकारी।
तनधारी-आनन्द अखिल-जीवन-फलधारी॥
यह तन अथवा जीउ अधिक इनसौं वा प्रियतम।
रहे न का महाराज अटल प्रन श्रीदसरथ मम ॥१३॥

हाय हाय ! यही वह कौशिल्या है–

यदि भई अनबन कबहुँ इनकी कान्त सौं एकान्त में।
निज निज अपार उराहनो दम्पति दियो मोहि तिहि समै।
नित प्यार में वा कोप में मध्यस्थ, दोउन को रह्यो।
बस तासु सुधि दाहति हृदय,अब जात नहि यह दुख सह्यो ॥१४॥

अ०—हाय, बहुत देर से इनकी साँस नहीं चलती और हृदय धड़कना भी बन्द होगया है।

और किसका बालक है जो अपने मृदुल मुग्ध अंगों से हमारी आँखें शीतल कर रहा है।

अ०—[आनन्दाश्रु भरकर अलग आप ही आप] यही भगवती भागीरथी द्वारा कथित कर्णामृत गुप्त रहस्य है किन्तु यह नहीं जानती कि इन दोनों चिरंजीवों में से कुश है या लव।

नव नील सरोरुह सों तनु स्यामल चारु सिरोरुह की छवि भावै।
पटु वृन्द कों जो अपनी श्रिय सों प्रिय पुण्य सिरी श्रियरान रनावै।
सिसुरूप सो मो पनि मत्स अनूप लगै रघुनन्दन ही जनु आवै
जिह को है जो कमल देखन सों चख अमृत अंजन सुभ लगावै॥

क०—मुझे तो यह लगता है कि यह बालक क्षत्रिय ब्रह्मचारी है

ज०—ठीक, क्योंकि—

दोऊ बगलानि और पीठ पै निषङ्ग राजै
तिनके निसिख सिखा उम्भाति सुहावै हैं।
अलप बभूति उर पावन रमायें मंजु,
धारें रुरु मृगछाला छटा छिति छावै है।
मौरवी लता की बनी कोंधनी ललित कटि
कौपीन मजीठ रंग रंगा सरसावै है
कर में धनुष तथा पीपर को दण्ड धारे,
आछी रुदराछी माला मोद उपजावै

भगवती अरुन्धती आप जानती हैं

अ०—आज ही हम लोग भी आये हैं।

अस तुम और सिय नेह की मूलहु गई नसाय ।—
धिक धिक अब याहि जीवनहिं, नरक सरिस दुखदाय ॥१७॥

कौ०—बेटी जानकी, क्या करूँ मेरे पापी प्रान भी किसी ने वज्र कील से जड़ दिये हैं जो शरीर से नहीं निकलते ।

अ०—राजकुमारी, धीरज धरो अब तुम्हें अपने अश्रुप्रवाह को रोकना चाहिये, क्या तुम्हें स्मरण नहीं है जो तुम्हारे कुलगुरु ने शृंगीऋषि के आश्रम में कहा था कि यह तो सब होनहार था सो हुआ किन्तु फिर भी अन्त में कल्याण ही होगा ।

कौ०—भगवती अब तो ऐसी आशा नहीं है ।

अ०—तो क्या आप उन कुलगुरु के वाक्यों को मिथ्या समझती हैं, आप जैसी क्षत्राणी को ऐसा नहीं समझना चाहिये उनका कथन कभी अन्यथा हो नहीं सकता ।

ब्रह्म ज्योति को तत्व जिन, प्रगट कियो अभिराम ।
तिन विप्रन के वचन में, नहिं संसय को काम ॥
श्री जिन बानी माहिं, बसति सदाँ मंगल करनि ।
निहचै करि सो नाहिं, मृषा-सब्द एकहु कहत ॥१८॥

[नेपथ्य में कोलाहल होता है]

[सब कान लगाकर सुनते हैं]

ज०—आज बालकों की छुट्टी है, इसी से सब के सब ऊधम मचाकर खेल रहे हैं, उन्हीं का यह कोलाहल है ।

कौ०—लड़कपन का आनन्द तो लड़कपन ही है [देखकर] अरे, इन बालकों में रामचन्द्र सा मनोहर कान्तिवान यह

कौ०—बेटा चिरजीव रहो।

अ०—आ बेटा [लव को गोद में लेकर आपही आप] बड़ भाग से न केवल गोद ही भरी किन्तु बहुत दिनों का मेरा मनोरथ भी पूर्ण हुआ।

कौ०—बेटा, इधर भी आ [गोद में लेकर] अहा, यह बालक न केवल खिलते हुए नीलोत्पल से घनश्याम वरण सुगठित सुन्दर शरीर से तथा कमलों की केसर खाए हुए ललित कण्ठ वाले मनहरण हंसों के से ललाम मृदु गम्भीर धीरस्वर से प्यारे रामचन्द्र की अनुहार करता है, किन्तु पूर्ण प्रफुल्लित पद्म गर्भगत दलों के तुल्य, इसका शरीर सम्पर्श भी वैसा ही मृदुल है। चिरजियो बेटा, अपना मुखचन्द्र तो दिखला, कैसा है। [ठोढ़ी ऊपर को उठाकर अच्छी भाँति निहार तथा प्रेमाश्रु भरकर] राजर्षि, क्या आप नहीं देखते कि अच्छी तरह निहारने से इसका मुख बेटी बधू जानकी के चन्द्रानन से मिलता है।

ज०—देखता हूँ सखी, मुझे भी वैसा ही लगता है।

कौ०—आश्चर्य है न जाने क्यों मेरा हृदय उन्मत्त सा हो गया है और सीता के से इस अनिर्वचनीय मनोहर मुख ने मुझ पर कुछ मोहनी सी डाल दी है।

ज०—*सिया रघुनन्दन की उनहारि, गयो यह बाल महा सुखदाय।*
मनो प्रतिबिम्बित है याहिमाहिं, रही उनकी दुति आशति छाय।
मिलै उर सों याहि को सब भाँति, विनै मय बोल सुशील सुभाय।
वृथा चित चञ्चल क्यों मन देव, कुमारग में भटक्यो इत आय ?

ज०—आर्य गृष्टि, मुझे बडा कौतुक हो रहा है जाकर भगवान वाल्मीकि जी से ही पूछिये और इस बालक से भी कहते जाइये कि ये कोई बडे बूढे तुम्हारे देखने के लिये उत्कण्ठित हो रहे हैं।

क०—जो आज्ञा।

[बाहर गया]

कौ०—क्या ऐसा कहने से वह आ जायगा ?

अ०—भला ऐसा सुन्दर स्वरूप है तो उसमें शील न होगा।

कौ०—[देखकर] देखो तो सही कैसे विनीतभाव से कंचुकी की बातें सुन वह बालक ऋषिकुमारों का साथ छोड कर के इधर ही को आ रहा है।

ज०—[बहुत देर तक टकटकी लगाकर] देखो जी यह क्या बात है

बिने सिसुता सों सुहावन चारु लसै यहि में अति तेज निकाई
लखें जिह सूछम दरसन हार परे न अजानहिं रूप लखाई।
बिमोह हरे मन मो बलवान रहै तप सा जिय में थिरताई
यथा लघु चुम्बक लड स्वओर कुधातहिं खैंचतु है बरिआई॥२१॥

[लव आता है]

ल०—माना, कि ये सब बडे हैं और परम माननीय हैं, तथापि जिन के नाम कुल और वर्ण का मुझे पता नहीं उन्हें पहले ही पहले अपनी ओर से किस प्रकार प्रणाम करूँगा। [विचार कर] किन्तु गुरुजनों के मुख से सुना है कि ऐसा करने में कोई बुराई भी नहीं है [सनम्र आगे बढ़कर] आप सब को लव प्रणाम करता है।

अ०—और ज०—हे कल्याणरूप, तुम्हारी बडी आरबल हो।

कौ०—बेटा, तेरी मा भी है ? तुझे कुछ अपने पिता की भी सुधि है ?

ल०—नहीं तो।

कौ०—तो तू किसका पुत्र है।

ल०—भगवान वाल्मीकि जी का।

कौ०—बेटा कहने की सी बात कहो।

ल०—मैं तो यही जानता हूँ।

[नेपथ्य में]

[देखो सैनिको, कुमार चन्द्रकेतु की आज्ञा है कि तपोवनाश्रम के समीप की भूमि पर कोई पाँव न रक्खे।]

अ०—और ज०—यज्ञ के घोड़े की रक्षा के लिये कुमार चन्द्रकेतु भी यहाँ आ पहुँचा है, इसलिये आज उसे भी देख सकेंगे, आहा! बड़ा धन्य दिन है।

कौ०—वत्स लक्ष्मण का पुत्र "आज्ञा देता है" ये अक्षर अमृत बिन्दु तुल्य कैसे सुन्दर तथा कानों को सुख देने वाले हैं।

ल०—आर्य, ये चन्द्रकेतु कौन है ?

ज०—तुम राजा दशरथ के पुत्र राम लक्ष्मण को जानते हो।

ल०—वे ही जिनकी कथा रामायण में कही है भला उन्हें कैसे नहीं जानता।

ज०—तो उन्हीं लक्ष्मणजी का पुत्र चन्द्रकेतु है।

ल०—अच्छा तो उर्मिला के पुत्र तथा राजर्षि मिथिलाधिपति के धेवते हैं।

अ०—(हँसकर) इससे यह प्रकट हुआ कि कुमार रामायण जानने में बड़ा प्रवीण है।

ज०—(विचार कर) जो तुम कथा जानने में बड़े प्रवीण हो तो बतलाओ कि दशरथात्मजों के पुत्रों का क्या नाम है। और कौन कौन किस मा से उत्पन्न हुआ है।

ल०—कथा का यह भाग हमने क्या, किसी ने भी अब तक नहीं सुना।

ज०—क्या कवि ने उसकी रचना नहीं की।

ल०—रच तो लिया किन्तु प्रकाशित नहीं हुआ। उसी का एक भाग, दृश्य काव्य के रूप में लिखने के लिये तयार हो गया है। अब उसे अपने हाथ से लिखकर वाल्मीकि जी ने नाटकाचार्य भगवान भरतमुनि के पास भेजा है।

ज०—सो किस प्रयोजन से।

ल०—जिससे भगवान भरतमुनि अप्सराओं द्वारा उसका अभिनय करावें।

ज०—यह तो बड़े आश्चर्य की बात है?

ल०—अजी महाराज वाल्मीकि जी की उसमें इतनी अधिक प्रीति है कि उसे कितने ही शिष्यों द्वारा भरताश्रम पर भेजा है। और फिर भी कहीं रास्ते में गड़बड़ी न हो जाय इस भय से, धनुषबाण बाँधकर हमारे भाई को साथ कर दिया है।

कौं०—तुम्हारे भाई भी है?

ल०—हाँ, उनका नाम "आर्य कुश" है।

कौं०—क्या तुम से जेठे हैं?

ल०—हाँ उनका जन्म कुछ पहले हुआ था।

कौ०—बेटा, तेरी मा भी है ? तुझे कुछ अपने पिता की भी सुधि है ?

ल०—नहीं तो।

कौ०—तो तू किसका पुत्र है।

ल०—भगवान वाल्मीकि जी का।

कौ०—बेटा कहने की भी बात कहो।

ल०—मैं तो यही जानता हूँ।

[नेपथ्य में]

[देखो सैनिको, कुमार चन्द्रकेतु की आज्ञा है कि तपोवनाश्रम के समीप की भूमि पर कोई पाँव न रक्खे।]

अ०—और ज०—यज्ञ के घोड़े की रक्षा के लिये कुमार चन्द्रकेतु भी यहाँ आ पहुँचा है, इसलिये आज उसे भी देख सकेंगे, आहा ! बड़ा धन्य दिन है।

कौ०—वत्स लक्ष्मण का पुत्र "आज्ञा देता है" ये अक्षर अमृत बिन्दु तुल्य कैसे सुन्दर तथा कानों को सुख देने वाले हैं।

ल०—आर्य, ये चन्द्रकेतु कौन हैं ?

ज०—तुम राजा दशरथ के पुत्र राम लक्ष्मण को जानते हो।

ल०—वे ही जिनकी कथा रामायण में कही है भला उन्हे कैसे नहीं जानता।

ज०—तो उन्हीं लक्ष्मणजी का पुत्र चन्द्रकेतु है।

ल०—अच्छा तो उर्मिला के पुत्र तथा राजर्षि मिथिलाधिपति के धेवते हैं।

अ०—(हँसकर) इससे यह प्रकट हुआ कि कुमार रामायण जानने में बड़ा प्रवीण है।

ज०—(विचार कर) जो तुम कथा जानने में बड़े प्रवीण हो तो बतलाओ कि दशरथात्मजों के पुत्रों का क्या नाम है। और कौन कौन किस मा से उत्पन्न हुआ है।

ल०—कथा का यह भाग हमने क्या, किसी ने भी अब तक नहीं सुना।

ज०—क्या कवि ने उसकी रचना नहीं की।

ल०—रच तो लिया किन्तु प्रकाशित नहीं हुआ। उसी का एक भाग, दृश्य काव्य के रूप में लिखने के लिये तयार हो गया है। अब उसे अपने हाथ से लिखकर वाल्मीकि जी ने नाटकाचार्य भगवान भरतमुनि के पास भेजा है।

ज०—सो किस प्रयोजन से।

ल०—जिससे भगवान भरतमुनि अप्सराओं द्वारा उसका अभिनय करावें।

ज०—यह तो बड़े आश्चर्य की बात है?

ल०—अजी महाराज वाल्मीकि जी की उसमें इतनी अधिक प्रीति है कि उसे कितने ही शिष्यों द्वारा भरताश्रम पर भेजा है। और फिर भी कहीं रास्ते में गड़बड़ी न हो जाय इस भय से, धनुष्बान बाँधकर हमारे भाई को साथ कर दिया है।

कौ०—तुम्हारे भाई भी हैं?

ल०—हाँ, उनका नाम "आर्य कुश" है।

कौ०—क्या तुम से जेठे हैं?

ल०—हाँ उनका जन्म कुछ पहले हुआ था।

कौ०—तो क्या बेटा तुम दोनों ने एक साथ ही जन्म लिया था।

ल०—हाँ जी।

ज०—अच्छा तो कथा कहाँ तक बन गई है।

ल०—लोगों के मिथ्या कलक लगाने के भय से घबडा कर, राजा ने यज्ञात्मजा भगवती सीता को वनवास देदिया, और शीघ्र होने वाले प्रसव की वेदना से व्याकुल उस बिचारी को वन मे अकेली छोड लक्ष्मण फिर लौट गये बस यहीं तक समझिये।

कौ०—हाय बेटी भोली भाली चन्द्रमुखी, उस समय निर्जन वन मे दैवकोप से तेरे कुसुम सदृश सुकुमार शरीर की क्या क्या दशा हुई होगी।

ज०—हाय बेटी,

तव दारुन वा अपमान सों तू, निहचै दृग नीरहि ढारति होइगी।
सिसु होन समै पै सिये वनमें, कहुँ बेहद पीडा सों आरति होइगी।
फिरि हाय अचानक सिंहनि सों, किमि बेबस धीरज धारति होइगी।
करिके सुधि मेरी डरी हिय में, कहुँ तातही तात पुकारति होइगी।२३

ल०—(अरुन्धती से) अजी ये कौन है ?

अ०—ये कौशिल्या हैं और ये राजा जनक है।

ल०—(बडे आदर खेद तथा कौतुक से देखता है)

ज०—हाय, दुष्ट पुरवासियों ने तो अपनी मर्यादा छोड दी और रामने भी कुछ विचार न करके शीघ्रता कर डाली, यह आश्चर्य है।

निरत रत्र सम घोर यह, सिय-सँग अनरथ-पात।
आलोचत, मम अति प्रबल कोधानल नहिं जात ॥
समर माहिं कर चाप गहि, अथवा दै निज साप।
अन्याइ कों हनि अबहि, उचित हरन सन्ताप ॥२४॥

को०—हाय भगवती अरुन्धती, राजर्षि के कोप को शान्त कर के राम की किसी प्रकार रक्षा कीजिये।

अ०—यहि भाँति निकारत कोप सही।
अपमानित मानधनी सबही ॥
सुत राम तिहार छिमा करिय।
नृप छाम सबै जिय स हरिय ॥
यह दीन अधीन प्रजा सुबरी।
प्रतिपालन जोग अबोध भरी ॥२५॥

ज०—प्रजा माहिं लखियत घन, निरपराध द्विजबाल।
७२ अबला गन जन जरठ अरु, अग गग बहाल ॥
मो जीवन धन प्रिय-सुअन, रघुनन्दन का और।
चाप साप को काम कछु, अब नहिं काहु ठौर ॥

(कौतुक भरे दौड़ते हुए बालकों का प्रवेश)

लड०—अजी "अश्व अश्व" कर के जिस पशु को नगर में पुकारते हैं सो हमने आज अपनी आँखों से देखा।

ल०—अश्व का वर्णन तो पशु शास्त्र तथा युद्ध शास्त्र दोनों ही में किया है कहो तो कैसा है ?

लड०—सुनिये,

पाछें पूँछ हलति इक लम्बी, पुनि पुनि ताहि हिलावै ।
चारि खुर्म अत्यन्त रुचिर, जिह दीरघ ग्रीव सुहावै ॥
नित नूतन तृन हरित चरत जो चपल चारु चितभावै ।
दूरजात, का कहहिं, संग चालि क्यों न लखहु वुह जावै ॥२७॥

(ऐसा कह लव को दोनों हाथ तथा मृगछाला पकड़ कर खींचते हैं)

ल०—(कौतुक और विनय पूर्वक परवस भाव दिखाकर) हे महानुभाव, देखिये देखिये ये मुझे खींचे लिये जाते हैं ।

(जल्दी से फिरता है)

अ०—और ज०—जाओ बेटा अपना कौतुक शान्त कर आओ।

कौ०—भगवती, बिना इसके देखे मुझ से रहा नहीं जाता, इस लिये आओ और कहीं से इस को देखें ।

अ०—अरे वह चपल तो बडी दूर निकल गया, कैसे दीख पडेगा।
(कंचुकी आता है)

कं०—महाराज वाल्मीकि ने कहा है कि, अवसर पड़ने पर इस बालक के बारे में आपको बतलाया जायगा ।

ज०—कुछ गूढ बात इसमें होगी, भगवती अरुन्धती, सखी कौशिल्या और आर्यगृष्टी चलिये सब के सब स्वयं भगवान वाल्मीकि जी से भेंट करें ।

[सब जाते हैं]

लड०—कुमार, देखो यही वह कौतुक है ।

ल०—देखा और जान भी लिया कि यह अश्वमेध का घोडा है ।

लड०—कैसे जाना ?

ल०—तुम भी बडे मूर्ख हो, तुमने उस काण्ड मे पढा तो है, देखते नहीं सैकडों रक्षक सिपाही हथियार बाँध कवच पहने धनुष लिये इसके साथ हैं—यह तो अधिकतर सेना ही दिखाई पडती है, इस पर भी तुम्हे विश्वास न हो तो जाकर पूछ लो।

लड०—तो क्यों भाई, ये सब के सब किस प्रयोजन से घोडे को घेरे फिरते हैं।

ल०—[स्पृहा के साथ आप ही आप] जान लिया, ठीक अश्वमेध तो विश्वविजयी नृपरत्न के अतुलित महत्व तथा जगत के अन्य क्षत्रियों के पराभाव की कसौटी है।

[नेपथ्य में]

दसकन्धर-कुल अटल रिपु, धर्म धुरन्धर धीर।
सात दीप नव खंड में, एक वीर रघुवीर॥
ताही को यह मख तुरग, कढा सुभग अपार। ५६
अथवा इनके रूप में क्षत्रिनु कों ललकार॥२८॥

ल०—[व्यथा प्रगट करके] अरे इन लोगों के वाक्य कैसे क्रोधानल बढाने वाले हैं।

लड०—क्या कहा गया, कुमार तुम तो चतुर हो सब समझ गये होंगे।

ल०—अरे क्या सारा ससार क्षत्रिय शून्य हो गया जो इस प्रकार दून की हाँक रहे हो।

[नेपथ्य में]

[अरे, महाराज रामचन्द्र के सामने कौन क्षत्री है]

ल०—अरे पामरो, तुम सबको धिक्कार है ।

यदि बड़े वह वीर, रहो करें ।
यह कहा अरु ढाग भयावनों ॥
कछु न लाभ वृथा बकवाद सों ।
सरनु मारि हरौं तुम्हरी भुजा ॥२८॥

अरे लड़को ढेले मार मार कर इस घोड़े को इधर फेर दो, जिससे यह बिचारा हिरनो मे चरता फिरे और उधर न जाने पावे ।

[एक सैनिक का प्रवेश]

सै०—(क्रोध और गर्व से) अरे क्योंरे चचल, क्या बक बक कर रहा है । निष्ठुर निर्मोही शस्त्रधारियो का दल बच्चों की भी सगर्व बातें नहीं सहता । जा जब तक अरि-मर्दन राज कुमार चन्द्रकेतु पूर्वीय वनों का मनोरम दृश्य देख कर न लौट आवें, तब तक इन गहन वृक्षो की आड में होके भागजा-अरे जा ।

लड़०—कुमार, इस घोड़े को रहने दो वह देखो शस्त्र चमकाते हुए सैनिकों का दल तुम्हें धमका रहा है, और यहाँ से आश्रम बहुत दूर है इसलिये चलो रे सब के सब हिरन की सी छलाँगें भरते हुए भाग चलें ।

ल० - [हँस कर] क्या सचमुच शस्त्र चमका रहे हैं [धनुष उठाकर] अच्छा तो फिर—

प्रबल प्रतचा जीह लहराति चचला सी,
उतकट क्राति विकराल दाढ जाकी है।
घोर घन घररर घोर जा टकोरन की,
गजरीली अट्टहाँसी रनरग छाकी है।
निकट उदर वारो, खेंचत तनत सोई,
मानो जमुहाई लेन परचडता की है।
विश्वहि ग्रसन काज उद्यत य चाप मम,
धारे आज जम की सरूप छवि बाँकी है ॥२०॥

[यथोचित धूमधाम कर सब जाते है]

[नेपथ्य में]

[अरे, महाराज रामचन्द्र के सामने कौन क्षत्री है]

ल०—अरे पामरो, तुम सबको धिक्कार है !

यदि बडे वह वीर, रह्यो करें ।
यह कहा अरु ढोंग भयावनो ॥
कछु न लाभ वृथा बकवाद सों ।
सरनु मारि हरौं तुम्हरी धुजा ॥२६॥

अरे लडको ढेले मार मार कर इस घोडे को इधर फेर दो, जिसमे यह विचारा हिरनो मे चरता फिरे और उधर न जाने पावे ।

[एक सैनिक का प्रवेश]

सै०—(क्रोध और गर्व से) अरे क्योरे चचल, क्या बक बक कर रहा है । निष्ठुर निर्मोही शस्त्रधारियों का दल बच्चों की भी सगर्व बातें नहीं सहता । जा जब तक अरि-मर्दन राज कुमार चन्द्रकेतु पूर्वीय वनों का मनोरम दृश्य देख कर न लौट आवें, तब तक इन गहन वृक्षो की आड मे होके भागजा-अरे जा ।

लड०—कुमार, इस घोडे को रहने दो वह देखो शस्त्र चमकाते हुए सैनिकों का दल तुम्हे धमका रहा है, और यहाँ से आश्रम बहुत दूर है इसलिये चलो रे मब के सब हिरन की सी छलाँगें भरते हुए भाग चलें ।

ल०—[हँस कर] क्या सचमुच शस्त्र चमका रहे है [धनुष उठाकर], अच्छा तो फिर—

प्रबल प्रतचा जीह लहराति चचला सी,
उतकट कोटि विकराल दाढ जाकी है।
घोर धन घररर घोर जो टकोरन की,
गजबीली अट्टहॉसी रनरग छाकी है।
विकट उदर बारो, खचत तनत सोई,
मानो जमुहाई लेन परचडता की है।
विश्वहिं ग्रसन काज उद्यत ये चाप मम,
धारे आज जम की सदाप छवि बॉकी है ॥३०॥

[यथोचित घूमधाम कर सब जाते हैं]

अंक ५

[नेपथ्य में]

[सैनिको घबड़ाओ मत, घबड़ाओ मत]

वृह अवासि ही दीसत यहाँ सों शंभू रथ छविवन्त ।
लावत सजावत अश्व दीसत वेगवन्त सुमन्त ॥
अति लाय मग हुदका पताका फरफराति अपार ।
तुव सग रन सुनि तुरत आवत चन्द्रकेतु कुमार ॥१॥

[रथ पर चढ़े धनुषबाण हाथ में लिये आश्चर्य और हर्ष युक्त चन्द्रकेतु का सुमन्त के साथ प्रवेश]

च०—आर्य सुमन्त देखो, देखो,

किञ्चित् कोप के कारण सों जिह, आनन ओप अनूपम साहै ।
गुञ्जित सिञ्जिनि सों धनुलै जग, छोरनि मञ्जु टकोरत जो है ॥
चचल पच शिखानि किय बरसावत सैन पै बान बिमोहै ।
चूह रह्यो रन रग महा यह बालक बीर बतावहु को है ॥२॥

अहा कैसा आश्चर्य है ?

अकेलोही है मुनि को यह बाल तऊ भयभीत न रंच लखावै ।
मनों कुलहा रघुवंस को चारु दुरथो जिय नेहलता उलहावै ॥
दलै गज गडथलीनि की ग्रन्थि जबै धनु घोर टकार मचावै ।
घिरयो बहु वीरन सों चहुँ तीर चलावत मो उर कौतुक छावै ॥३॥

सु०—आयुष्मन्—

विमल छबियुत सुर असुरसन विपुल वीर जवान।
निरखि यह सिसु सकल विधिसों ठीक तोहि समान॥
मोहि सुध आवत परम धृति-घनु सघन घनश्याम।
कौशिकसुत-मख-रिपुनि प्रमथत सभगतनु श्रीराम॥४॥

च०—*लरत सुन अति चचालित जिन अँगुली उत्ताल।*
समर सब कराल गाहि अस कुपित सैन बिसाल॥
कनक-किंकिनि झनझनावत टिनिन टिन रथजाल।
निरत मदजल चुअत श्यामल द्विरद वारिद माल॥
जे घटा दल सकल घेरत एक बालहि आज।
होत नीचे नैन मम लखि लाज को यह काज॥५॥

सु०—सब जन मन मिल कर इसका बाल बाँका नहीं कर सकते तो फिर एक एक से क्या होना है।

च०—आर्य, शीघ्र करो! इसने चारों ओर हमारे आश्रित जनों का संहार करना आरम्भ कर दिया।

दुंदभी की घोरसन नादा ठन्कार जाकी।
बाढ़ि बाढ़ि रन ओर ताव सरसाये देत।
कुंजरनि पुंज जो गराजि गिरि कुंजनि को,
गुंजत, तिनहू कान ज्वर उपजाये देत॥
भाजत भयानक विपुल मुंड रुंडनिसों,
काटि यह वीर महीतल पै बिछाये देत।

लाग जनु काल विकराल पूरन अपाय,
खाय खाय जूठिन चहुँधा बिथुरायें दंत ॥३॥

सु०—[अपने आप] ऐसे पराक्रमी के साथ चन्द्रकेतु को द्वन्दयुद्ध करने की किस प्रकार अनुमति दूँ [विचार कर] और रघुवशी राजाओं में रहते रहते हम बूढ़े हो गये इस रण भूमि से पीठ दिखलाना रघुवंशियो का धर्म नहीं-इस लिये रण उपस्थित होने पर सिवाय लडने के और क्या उपाय है।

च०—[विस्मय लज्जा और खेद से] धिक्कार है कि हमारी सेना के लोग रण से भागने लगे।

सु०—[रथ का वेग दिखाकर] आयुष्मन वह वीर अब बातें करने योग्य आपके समीप आ गया।

च०—[विस्टनि जनाता हुआ] आर्य, दूतों ने इसका नाम क्या बतलाया है ?

सु०—लव।

सु०—*तुच्छ सिपायनु विजय करि यस न बढ़े लव तार।*
हाँस बुझावहु जीय की मो सग लरि इत ओर ॥७॥

सु०—कुमार देखिये देखिये।

सुनत ही तुव टेर दल को, दलन ताजि रन धीर।
मुरत इत, नर मद भरयो यह लसत बालक वीर ॥
सघन घन की गरजना सुनि, सिंह को जिमि बाल।
... सुदरप उमगि सों, ताजि कुअरनि ततकाल ॥८॥

(नेपथ्य में महा कोलाहल)

(शीघ्र और उद्धत चाल से एक का प्रवेश)

ल --वाह, राजपुत्र वाह, क्यों न हो, आखिर तो सच्चे इक्ष्वाकुवंशी राजपूत हो न! लो आओ मैं तुम्हारे सामने आया।

(नेपथ्य में महा कोलाहल)

ल०—(शीघ्र लौट कर) अरे क्या फिर भी ये हारे हुए योद्धा साहस करके युद्ध के लिये लौट आये हैं और मुझ पर प्रहार करना चाहते हैं, धिक् निर्लज्जो!

यह जो उठत सब ओर सों दल-प्रबल कलकल-घोर।
चित, लीलतहि अबहि तिहि मम चण्ड कोप अथोर॥
जिमि प्रलय आँधी सों विचलत जलधिजल बल भूरि।
गिरि पात सन अति छुभित बड़वानल-हरे चहुँ पूरि॥ ९॥

(इधर उधर घूमता है)

च०—हे कुमार!

निज अलौकिक सौर्य सों तू लगत प्रिय मन माहिं।
मम मित्र तिह कारन भयो, मुहि ताहि अन्तर नाहिं॥
हे वीर, निज ही सैन कों हनत फिर किहि हेतु।
जग दरप-नासन तुव, कसौटी अहहि चन्दर केतु॥१०॥

ल०—(सहस शीघ्र लौट कर) अहा! इस सूर्यवंशी महा पराक्रमी वीर की वाणी मधुर और कटु दोनों ही प्रकार की है, इस कारण इन्हें छोड़ कर इसे ही देखना चाहिये।

(नेपथ्य में फिर कोलाहल)

ल०—(क्रोध और तिरस्कार पूर्वक) अरे इन पापियों के कोलाहल में तो नाक में दम हो गया यहाँ तक कि इस वीर के साथ बातें भी करते नहीं बनता।

(लौटता है)

च०—(सुमन्त्र से) आर्य देखिये देखिये, देखने योग्य है।

कौतुक जनक यह दरप सों मुहि लच्छ करि जा ओर।
आवत लसत मम सैन अनुसृत हाथ लै धनु घोर॥
दोउ ओर सों जनु लहि झकोरन पवन के घनश्याम।
सुठि पाक-सासन को सरासन धारि शोभा धाम॥११॥

सु०—कुमार ही इसे देख सकते हैं, हम तो विस्मय के मारे यह भी नहीं कर सकते।

कु०—हे राजा लोगो!

कहँ तुम सब गज हय रथासीन।
कहँ यह पदाति साधन विहीन॥
कह कवचयुक्त तुव तन कराल।
कहँ याहि तन कोमल मिरग-छाल॥
कहँ वयोवृद्ध तुम जन अनेक।
कह निस्सहाय यह बाल एक॥
तउ करत याहि पै तुम प्रहार।
धिक्कार सबनि कों बार बार॥१२॥

ल०—(दुख के साथ) क्या यह मुझ पर दया दिखलाता है ? (सोच कर) अच्छा पहल तो जृम्भकास्त्र से सेना को मोहित करूँ जिससे समय नष्ट न हो।

(ध्यान करता है)

सु०—अरे यह क्या अचानक ही हमारी सेना का कोलाहल बन्द हो गया।

ल०—अब मैं इस अभिमानी को देखूँगा।

सु०—वत्स मेरी समझ में तो इसने जृम्भकास्त्र का प्रयोग किया है।

च०—इसमें क्या सन्देह है

मनौ प्रचण्ड अन्धकार बिज्जु सन्निपात है।
लखै जबैहि चक्षु चौंधियात ना दिखात है॥
लिखी सी चित्रसी उड़ी समस्त सैन ह्वै रही।
अमोघ घोर जृम्भकास्त्र है यही अवश्य ही॥

…—देखो देखो कैसे आश्चर्य की बात है।

…सघन रसातल-गूढ़भाग कुञ्जनि में,
…पुञ्जित तिमिर सम कारे कजरारे हैं
…तर-तपत को सो पिङ्गल प्रकाश करि,
मरैं अब जृम्भक अकास में पसारे हैं।
प्रलै-प्रबल प्रचण्ड पौन उचालित,
…विन्ध्याचल-कूट-कन्दरानि में करारे हैं

धावत कापिलरङ्ग विद्युत सँवारे घने,
धाराधर मानहु मतङ्ग-मतवारे है ॥१४॥

सु०—भला उनके पास जृम्भकास्त्र कहाँ से आये ?

च०—मेरी समझ में तो भगवान वाल्मीकिजी ने दिये होंगे ।

सु०—वत्स, भगवान वाल्मीकिजी को अस्त्रों के विषय से क्या प्रयोजन ? और विशेष कर जृम्भकास्त्रों से, क्योंकि—

यह सबै उत्पन्न कृशास्व सों,
प्रथम कौसिक कों उनसों मिलें ।
तिन विचारि स्वसिष्य परम्परा,
पुनि दिये गुरु सेवक राम कों ॥ १५ ॥

च०—तब भी क्या हुआ जिन लोगों में सत्व गुण का विशेष आविर्भाव हो गया है, वे आपही समन्त्र जृम्भकास्त्र के देने में समर्थ होते हैं ।

सु०—वत्स, सावधान हो जाओ वह वीर पास आ पहुँचा ।

दोनों कु०—[परस्पर आप ही आप] यह कुमार तो बड़ा सुन्दर है ।

[स्नेह से देख कर]

लहि औचक जासु समागमकों, लखि के यहि वीरपनों अधिकाई ।
भयो कोऊ उदै ये पुरानो किधौं, परचे जनमान्तर को दृढ आई ।
अपनो अथवा अपने कुलकौ, विधि के वससों यह जानी न जाई ।
परि या छिन याहि लखें उमगे प्रिय भ्रात सनेह हिये सुखदाई ।

सु०—बहुधा जीवधारियों का धर्म ही यह है, जिसके कारण

एक दूसरे से रसमयी प्रीति होजाती है-इसी को लोग गूढ़ मैत्री या 'आँख का लगना कहते हैं और इसे ही अनिर्वचनीय निस्वार्थ प्रेम के नाम से पुकारते हैं।

सहज नेह रस धाम, जापै बस कोउ ना चलत।
नित चखिया को काम, जुग अन्तस् पटपै करै ॥१७॥

दोनों कु०—[एक दूसरे से आप ही आप]

चीकनो चारु पटम्बर सो, अति कोमल मंजुल जासु शरीर है।
खंडित कैसे बने यहि पैं, मम तीखो कराल निनासक तीर है।
देखत ही जिहि भेटनकों, अकुलाय बड़ो मन होत अधीर है।
गात सबै पुलकात अबै, भरै नैनन् माहि सनेह को नीर है।१८।

अथवा—

गात सब चलाये बिना कहा और है, सरसों, जा रतमत्त अपार है
पुनि सखाहिं पारिकें काह भयो, जो कियो भट ऐसेहु पै नाहि चार है
जनसों सुसमोरत का गिनि है,लखि मोहि उठावत अस्त्र अगार है।
हिय प्रेम,तऊ विपरीत चलै, अति दारुन बीरन को व्यवहार है।१६।

सु०—[लव को देख आँसू भर के आपही आप]

मृदु मनोरथ की प्रिय-माल जो,
प्रथम ही हरिने हरिहीं लई।
लाने चुके जब कोमल वल्लरी,
तब सु—आस प्रसूननकी कहाँ ॥२०॥

च—आर्य सुमन्त, मैं रथ से उतरता हूँ।

सु०—किसलिये, वत्स,

च०—जिससे वीर का आदर और क्षत्रिय धर्म का यथावत् पालन हो क्योंकि युद्धशास्त्रवेत्ताओं के मतानुसार रथी को पदाति के साथ लड़ना कहाँ उचित लिखा है।

सु०—(आपही आप) हाय मैं तो धर्म संकट में पड़ा,

कहहुँ का विधि न्याय-मृजादका,
कहहुँ याहि अबै प्रतिषेध मैं।
रथ बिना लरिबे हित शत्रुसों,
किमि भला अनुमोदन ही करौं ॥२१॥

च०—जब हमारे पिता, पितामह आदि धर्म विषयक शंकाओं में आप से परामर्श लेते आये हैं, तो अब इतनी चिन्ता में पड़ने का क्या कारण है।

सु०—आयुष्मन् तुमने ठीक विचार किया है।

समर न्याय यही सब भाँतिसों
यहि अमोल सनातन धर्म है।
बस यही रघुसिंहन की रही,
सतत[1] वीरचारित्रमयी प्रथा[2] ॥२२॥

च०—आर्य आपने ठीक कहा,

तुव पढ़े इतिहास पुरान हैं,
सदुपदेस ललाम सुनीति के।

बिसद जानि सबौ बस आपुही,
कुल-मृजाद सबै रघुबसकी ॥२३॥

सु०—(आँखों में आँसू भर और गले लगा कर)

तुव तात लछिमन ने कियो जो इन्द्रजीत निपात ।
सो सब लग मोहि जा परी जनु कालि की सी बात ॥
अब तिनहुँ के तुम पुत्र, धारत बीरता अतसाज ॥
धनिधन्य दसरथ कुल प्रतिष्ठा निमल छाई आज ॥२४॥

च०—(कष्ट के साथ)

कहा प्रतिष्ठा होइगी, हम कुल की मतिवान ।
कुल जेठे ही के नहीं, जब कोऊ सन्तान ॥
याही दुखसों अति खरे, चिन्तातुर छवि छीन ।
मम पितु अरु द्वै य धुतिन, निसिदिन रहत मलीन ॥२५॥

सु०—हाय, चन्द्रकेतु की ये बातें सुनने से हृदय विदीर्ण हुआ जाता है ।

ल०—(आप ही आप) अहा, अन्तःकरण में मिश्रित रसका सचार हो रहा है ।

जिमि करत प्रफुलित कुमुदिनी कों उदित पूरन चद ।
तिमि भरत हिय में परम जाको अति अमल आनद ।

किन्तु —

च—आर्य सुमन्त, मैं रथ से उतरता हूँ।

सु०—किसलिये, वत्स,

च०—जिससे वीर का आदर और क्षत्रिय धर्म का यथावत् पालन हो क्योंकि युद्धशास्त्रवेत्ताओं के मतानुसार रथी को पदाति के साथ लड़ना कहाँ उचित लिखा है।

सु०—(आपही आप) हाय मैं तो धर्म संकट मे पड़ा,

कहहुँ का विधि न्याय-मृजादका,
कहहुँ याहि अबै प्रतिषेध मैं।
रथ बिना लरिबे हित शत्रुसों,
किमि भला अनुमोदन ही करौं ॥२१॥

च०—जब हमारे पिता, पितामह आदि धर्म विषयक शंकाओं में आप से परामर्श लेते आये हैं, तो अब इतनी चिन्ता मे पड़ने का क्या कारण है।

सु०—आयुष्मन् तुमने ठीक विचार किया है।

समर न्याय यही सब भाँतिसों
यहि अमोल सनातन धर्म है।
बस यही रघुसिंहन की रही,
सतत[१] बीरचरित्रमयी प्रथा[२] ॥२२॥

च०—आर्य आपने ठीक कहा,

तुव पढे इतिहास पुरान हैं
सदुपदेस ललाम सुनीति के।

निसद जानि सकौ बस आपुही,
कुल-मृजाद सबै रघुवसकी ॥२३॥

सु०—(आँखों में आँसू भर और गले लगा कर)

तब तात लछिमन ने कियो जो इन्द्रजीत निपात ।
सो सब लग मोहि जा घरी जनु कालि की सी बात ॥
अब तिन्हुँ के तुम पुत्र, धारत धीरता भतसाज ॥
धनिधन्य जसरथ कुल प्रतिष्ठा विमल छाई ओज ॥२४॥

च०—(कष्ट के साथ)

कहा प्रतिष्ठा होइगी, हम कुल की गतिवान ।
तल जेठे ही के नहीं, जब कोऊ सन्तान ॥
याहीं दुखसों अति रारे, चिन्तातुर छबि छीन ।
मम पितु अरु द्वै बघुतिन, निसिदिन रहत मलीन ॥२५॥

सु०—हाय, चन्द्रकेतु की ये बातें सुनने से हृदय विदीर्ण हुआ जाता है ।

ल०—(आप ही आप) अहा, अन्तःकरण में मिश्रित रसका सचार हो रहा है ।

जिमि करत प्रफुलित कुमुदिनी कों उदित पूरन चद ।
तिमि भरत हिय में रम्य जाको अति अमल आनद ।

किन्तु —

च—आर्य सुमन्त, मैं रथ से उतरता हूँ।

सु०—किसलिये, वत्स,

च०—जिससे वीर का आदर और क्षत्रिय धर्म का यथावत् पालन हो क्योंकि युद्धशास्त्रवेत्ताओं के मतानुसार रथी को पदाति के साथ लड़ना कहाँ उचित लिखा है।

सु०—(आपही आप) हाय मैं तो धर्म संकट में पड़ा,

कहहुँ का विधि न्याय-मृजादका,
कहहुँ याहि अबै प्रतिषेध मैं।
रथ बिना लरिबे हित शत्रुसों,
किमि भला अनुमोदन ही करौं ॥२१॥

च०—जब हमारे पिता, पितामह आदि धर्म विषयक शंकाओं में आप से परामर्श लेते आये हैं, तो अब इतनी चिन्ता मे पड़ने का क्या कारण है।

सु०—आयुष्मन् तुमने ठीक विचार किया है।

समर न्याय यही सब भाँतिसों
यहि अमोल सनातन धर्म है।
बस यही रघुसिंहन की रही,
सतत[१] बीरचरित्रमयी प्रथा[२] ॥२२॥

च०—आर्य आपने ठीक कहा,

तुव पढे इतिहास पुरान हैं,
सदुपदेस ललाम सुनीति के।

निसद जानि सकौ वस आपुही,
कुल-मृजाद सबै रघुवसकी ॥२३॥

सु०—(आँखों में आँसू भर और गले लगा कर)

तुव तात लछिमन ने कियो जो इन्द्रजीत निपात ।
सो सब लगे मोहिं आ घरी जनु कालि की सी बात ॥
अब तिनहुँ के तुम पुत्र, धारत बीरता अतसाज ॥
धानिधन्य जसरथ कुल प्रतिष्ठा विमल छाई आज ॥२४॥

च०—(कष्ट के साथ)

कहा प्रतिष्ठा होइगी, हुम कुल की मातिवान ।
कुल जेठे ही के नहीं, जब कोऊ सन्तान ॥
याहीं दुखसों आति खरे, चिन्तातुर छबि छीन ।
मम पितु अरु द्वै बन्धुतिन, निसिदिन रहत मलीन ॥२५॥

सु०—हाय, चन्द्रकेतु की ये बातें सुनने से हृदय विदीर्ण हुआ जाता है ।

ल०—(आप ही आप) अहा, अन्तःकरण में मिश्रित रसका सचार हो रहा है ।

जिमि करत प्रफुलित कुमुदिनी कों उदित पूरन चद ।
तिमि भरत हिय में दरस जाको आति अमल आनद ।

किन्तु —

झन झनन झनझन करन कटु गुनगुज-मय धनु जोइ।
गहि ताहि, यह भुज, वीररस भरि समर-प्रिय पुनि होइ॥२॥

च०—(रथ से उतर कर) आर्य, सूर्यवंशी चन्द्रकेतु आपको प्रणाम करता है।

सु०—*अतुलित अजित अपार ओजमय, पावन भारो।*
नृप ककुत्थ के तुल्य होउ प्रिय तेज तिहारो।
नित्य विष्णु बाराह देव तुम बिघन नसावें।
सुन्दर करि कल्यान मोद हिय में सरसावें॥२७॥

और भी—

तुव कुल पिता सविता समर में तोहिं आनन्दित करैं।
रघुवंश-पूज्य वशिष्ठ मुनिहूँ नित्य तुव हिय सुख भरैं।
अरु इन्द्र इन्द्रावरज पावक पवन पन्नग रिपु भली।
निज ओज की पूरन प्रभा दै करहिं तोहि सब विधि बली॥
मन्त्र सी श्रीराम लछिमन-धनु प्रतचा धुनि घनी।
देइ तोकों मंजु मंगल-करनि जय सोभा सनी॥२८॥

ल०—(च० को रथ से उतरता देख) कुमार, बस करो, हो गया आदर। आप तो रथ पर बैठे ही अच्छे लगते हैं।

च०—तो आप भी दूसरे रथ की शोभा बढ़ावें।

ल०—(सुमन्त से) आर्य राजकुमार को रथ पर बैठा लीजिये।

सु०—तो तुम भी वत्स चन्द्रकेतु की बात मान लो।

ल०—जो वस्तु अपनी ही है भला उसके स्वीकार करने में सकोच कैसा ? किन्तु बात यह है कि वनवासी होने के कारण हमें रथ पर चढने का अभ्यास नहीं।

सु०—वत्स, तुम दर्प और सौजन्य का यथोचित वर्ताव करना जानते हो, जो कहीं तुम ऐसे को इक्ष्वाकु-कुल कमल दिवाकर राजा रामचन्द्र देखते तो उनका हृदय प्रेम से गद्गद् हो जाता।

ल०—सुना गया है कि वे राजर्षि बडे सज्जन पुरुष हैं।

साँचहि हमहुँ न मरन-विघनकारि।
जो रहे आपु निज हिय विचारि ॥
गुनवन्त राम कों जगत माहिं।
कहु मानत को जन पूज्य नाहिं ॥
पै सब क्षत्रिनु कों तुच्छ मानि।
तुव हय-रक्षक जो कहीं बानि ॥ वन्दन
सुनि ताहि हमहु जिय चढयो रोस।
बस, और कछु नाहिं कियो दोस ॥२६॥

च०—(मुसकराता हुआ) क्या आप को हमारे पूज्य चरण तात के प्रताप की बडाई बुरी लगती है।

ल०—अजी बुरी लगे या न लगे, पर इतना मैं पूछता हूँ कि राजा रामचन्द्र तो बडे धीर स्वभाव के सुने जाते हैं। वे न तो स्वयं अभिमानी हैं न उनकी प्रजा को अभिमान होता है, फिर बतलाइये ये लोग उन्हीं के आदमी होकर ऐसी राजसी भाषा क्यों प्रयोग करते हैं। देखिये—

दरप भरे उन्मत्त पुरुष की बानी।
ऋषीनु ने सब ठौर राक्षसी मानी।
सकल बैर को सोई बीज बुवावै।
नष्ट भ्रष्ट करि जगत कष्ट उपजावै ॥३०॥

इस प्रकार उन्होंने इसकी निन्दा की है और इसके विरुद्ध जो अन्य वाणी है उसकी प्रशसा वे इस भाँति करते हैं—

कामना पूरी करै सब की दुख दारिद को दल दूरि बहावै।
पाप के पुजहि लुञ्ज करै अरु कीरति लोनी लता उलहावै॥
सुन्दर सुनृत बानी सदा जय मगल मोद की मातु सुहावै।
याही सों धीरनु के मत में वह काम-दुहा सुरधेनु कहावै ॥३१॥

सु०—भगवान वाल्मीकि के शिष्य इस कुमार का तो बडा ही पवित्र स्वभाव है आर्ष दृष्टान्त दिये बिना तो बातें ही नहीं करना जानता।

ल०—और जो चन्द्रकेतु यह कहते हैं, कि क्या तुमको पूज्य-चरण तात के प्रताप की बडाई बुरी लगती है, सो आप ही बतलाइये कि क्षत्रिय धर्म क्या एक ही व्यक्ति के लिये है, क्या एक राम ही के सिर क्षत्रियों के समस्त वीरतादि गुणों का ठेका है, और कोई उनका आधार ही नहीं हो सकता ?

सु०—बस करिये, अधिक न बढाइये, कहने से ही परख लिया कि आप रघुवशावतस महाराज राम को नहीं जानते।

प्रबल सैनिक बीरन मारिकें,

प्रगट सत्य करी तुम बीरता।

परशुराम झुके जिह सामने,

जानि बकौ उनकी काहि बात यों ॥२२॥

ल०—(हँस कर) आर्य, मान लो कि उन्होंने परशुराम जी को भी हरा दिया, पर इससे भी क्या बड़ी प्रशंसा की बातहुई।

जीभ को बल द्विजन में यह स्वयं सिद्ध प्रमान।

बाहु को बल क्षत्रियनु में जग प्रसिद्ध महान ॥

सस्त्र-धारी द्विज रहेउ भृगुबसमनि महाराज।

कहु तिनहिं जय करि राम ने कियो कौन दुर्जय काज॥२३।

च०—(बिगड़ कर)

कौनसो यह पुरुप उपज्यो नयो जग के माहिं।

जासु लेखे परसुरामहु बीर पुंगव नाहिं।

सप्त भुवनहिं अभय को निज बिपुल दीयो दान।

तिन तात पावन चरितको नहिं जाय रचक ज्ञान ॥२४॥

ल०—अजी रघुपति का चरित्र और उनकी महिमा कौन नहीं जानता, यदि कुछ कहने की बात हो तो कही भी जाय, किन्तु हम अपने मुख से क्यों कहैं—

जे बड़े जगत तिन बड़ काम।

सब भाँति उचित उज्ज्वल ललाम॥

तिन चरित अलौकिक अति उदार।

आलोच्य विषय है नाहिं हमार ॥
जे करत सुन्दातिय को सँहार।
लूटत अखंड यस तउ अपार !
जे खर राक्षस सन युद्ध माहिं।
त्रय पैंड हटत, तउ 'सभय' नाहिं !
जिन ,बालिनिधन कौशल बितान।
तिन घोषण छायो जग महान ॥२५॥

च०—अरे, तूने तात की निन्दा करके मर्यादा तोड़ दी, और अब भी बकता ही जाता है।

ल०—क्या भौंह चढ़ा के लगे मुझे ही आँखें दिखाने !

सु०—अब इन दोनों की क्रोधानल भड़क गई—

कोपँज है कम्प, जासों चोटिनु की गाँठि खुलि,
चचल चिकुर चारु कारे सटकारे हैं।
कछु कछु कोकनद-छद-छबि के समान,
भये नैन इनके अपहि रतनारे हैं !
सिकुरत, चलत, कुटिल भौंह भग युत,
आनन सचाप अति उग्र-ओपवारे हैं।
लसत मयंक सकलंक, किधों पंकज पै,
गुंजरत मानहु मलिन्द मतवारे हैं ॥३६॥

दोनों कु०—(परस्पर) अच्छा तो फिर, आओ रण योग्य भूमि में उतर चलें। (सब गये)

अंक ६

अथ विष्कम्भक

(उज्ज्वल विमानों पर चढ़े विद्याधर और विद्याधरी का प्रवेश)

वि०—अहा, असमय कलह के कारण परम प्रचण्ड अखण्ड क्षात्रतेज से दीप्त इन सूर्यवंशी कुमारों के विक्रम-युक्त विचित्र चरित्रों ने सब सुरासुरों को कैसा विमोहित कर लिया है। क्योंकि हे प्रिया, देखो—

झन झनन कंकन सम क्वणित कल किंकिनीक बिसाल।
जुग छोर सन लगि, जासु गुन, अति करति सब्द कराल॥
धनु तानि अस, सर तजत, जिन सिस विरत चंचल चारु।
जग-भयद अद्भुत तिन दोउन माधि बढ़त युद्ध अपारु॥१॥

दोउ कुँवरनु के कल्यान काज।
दुम दुम दुन्दुभि नभ बजति आज॥
गम्भीर जासु सुख-दै रौर।
जनु सरस सघन घन घन घोर॥२॥

इससे चलो हम भी, इन दोनों वीरों पर सुन्दर प्रफुल्लित स्वर्णमय सरोजों से मिश्रित, मधुर मकरन्द सुरभित, कल्पतरु मन्दार आदि दिव्य द्रुमों के नवीन मणि सरीखे स्वच्छ कमनीय कलित पुष्पों की निरन्तर सानन्द सघन वर्षा करें।

विद्याधरी०—अब के फिर किस लिये इस सहसा दौडती हुई विद्युच्छटा मे सारा आकाश झटपट पिंगल वर्ण का हो गया है।

वि०—आज तो,

किधौं त्रिलोचन को यह लोचन तीसरो।
खुल्यो सृष्टि सहार-हेतु रिस सों भरो॥
चमकत जनु उज्जल जोतिर्मय चण्ड है।
बिसकर्मा की सान चढयो मार्तण्ड है॥ २॥

(कुछ सोच कर) ओहो, जाना, अब जाना, चन्द्रकेतु ने यह आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया है, उसी की यह ज्वाला बरस रही है –

अवसि जासु भयानक झर्प सों,
झरासि चौर धुजा जिनके गये।
अस बिचित्र बिमाननु-मडली,
भजि चली भय सों छितराय कें॥
बिबिध रग मये झुरसे लसें,
सुपट अचल दिव्य धुजान के।
जनु सिखा उनपें बहु अग्नि की,
मुदित मजुल कुकुम डारती॥ ४॥

कैसे आश्चर्य की बात है, वह देखो भीषण वस्त्रखण्डों के समान तीक्ष्ण अगारों की झडी लगाए, और वेग से लपलपाती उठती ज्वाला जिह्वा मे उदण्ड भैरव रूप धारणकिये

मानो साक्षात भगवान अग्निदेव चले आ रहे हैं। चारों ओर यह उन्हीं का प्रचण्ड प्रताप फैल रहा है। अब तो ज्वाला सही नहीं जाती, इसलिये प्यारी को अपने पार्श्व में छिपा कर यहाँ से कहीं दूर भागना चाहिये।

(वैसा ही करता है)

नि०धरी—आहा प्राणनाथ! मंजु मुक्तमाल सम शीतल मृदुल तुम्हारे पुष्टकाय के स्पर्श से आनन्दोल्लासित मुझ अधमुँदे तरल नयनों वाली का सन्ताप अब दूर हो गया है।

नि०—प्यारी, भला मैंने इसमें क्या किया, अथवा

वृत्त कछू न करै तऊ सर्वदा,
बसि समीप सबै विपदा हरै।
सुहृद जो कहुँ जासु जहान में,
अनसि सो तिह जीवनमूरि है ॥ ५ ॥

वि०धरी०—चमचमाती चपला की चपल चमकयुक्त मतवाले मयूरों के कंठ सरीखे सघन श्यामल धराधरों से यह आकाश-मण्डल क्यों व्याप्त हो रहा है?

वि०—अहा! अवश्य ये कुमार लव द्वारा चलाये हुए वरुणास्त्र का प्रभाव है। देखो प्यारी, किस प्रकार सहस्रों निरन्तर मूसलधाराओं के पड़ने से पावकास्त्र ठण्डा हो गया।

वि०धरी०—यह बड़े आनन्द की बात हुई।

नि०—हाय हाय अति मन की बुरी होती है, क्योंकि प्रबल आँधी के जोर से चारों ओर उमड़ते घुमड़ते घूमघूम कर घनघोर मचाते वाले मतवाले मेघों के सघन गाढान्धकार में

हुआ, किवा महसा सम्पूर्ण विश्वग्रसनार्थ फटे हुए विकराल कालकंठ की मुखकन्दरा में चक्कर खाता हुआ, अथवा युगान्त की योगनिन्द्रा में मग्न निश्चेष्ट साँस बन्द किये नारायण के उदर मे पडा हुआ सा ये सम्पूर्ण जीवलोक काँप रहा है। वाह! कुमार चन्द्रकेतु वाह, उपयुक्त अवसर पर तुमने वायव्यास्त्र का प्रयोग किया। क्योंकि --

चलत पौन अहा वह देखिये,
नासि गयीं घन मेघन की घटा।
जगत ज्ञान हिये जिमि होत है,
जग-प्रपंच सबै लय मह में ॥६॥

वि० धरी०—नाथ, देखो तो ये कौन है जो शीघ्रता के साथ, ऊँचा हाथ किये, दूर ही से पटके का छोर हिलाकर लडाई को मधुर भाषण द्वारा बरजता हुआ, दोनो कुमारो के बीच मे अपना विमान उतार रहा है।

वि०—(देखकर) यह तो शम्बूक को मारकर महाराज रघुनाथ जी आ रहे हैं।

सुनिकें धर बैन प्रभाव भरयो उनको, मृदु-मंजु सनेह सों छायो।
नित गौरवरासन, युद्ध तज्यो लव धारत सीस सुभाव सुहायो ॥
अरु चन्दरकेतु विनीत महा, निज तात क पायन सीस नवायो।
अस पूत दोऊन के भेटन सों नृप मंगल मोद लहै मनभायो ॥७॥

चलो प्रिया हम भी अब इधर से चलें।

(दोनों जाते हैं)

(इति विष्कम्भक)

(रामचन्द्र, लव और प्रणाम करते हुए चन्द्रकेतु का प्रवेश)

रा०—(पुष्पक विमान से उतर कर)

दिनकरकुल के चन्द, चन्द्रकेतु पावन परम ।
करहु मोहि सानन्द, लागि हृदय सों तुरत अब ॥
निज सरीर परसाउ, तुहि न सहस सीतल सुखद ।
प्रियतम आइ नसाउ, बिकल करनि मम-जिय-जरनि ॥८॥

च०—महाराज को प्रणाम है ।

रा०—(प्रेम से आँसू भर तथा उसे गले लगा कर) बेटा दिव्यास्त्र धारण करने वाले तुम कुशल में तो रहे ?

च०—महाराज के आशीर्वाद और अद्भुत पराक्रमशाली प्रियदर्शन लव के दर्शन लाभ से मुझे परम आनन्द है । अब तात, आपकी सेवा में विशेष कर यह निवेदन है कि आप उसी कृपादृष्टि के साथ जो कि मेरे ऊपर रही है अथवा उससे भी अधिक स्नेहभाव से इस प्रशस्त महावीर को देखिये ।

रा०—(लव को देख कर) अहा वत्स ! चन्द्रकेतु के मित्र की बड़ी गम्भीर सुहावनी मूरत है ।

तनधारा किधौं धनु वेद लसै, तिहुँलोक की पीर नसावन काज ।
यह क्षीतरूपी छत्रिय धर्म किधौं, अति पावन सेतु रखावन काज ॥
किधौं शक्ति समाज उदोत भयो, गुन संचय के मन भावन काज ।
जग पुण्य पदारथपुंज घनो, किधौं प्रेम प्रमोद जगावन काज ॥६॥

ल०—अहो दर्शनमात्र ही से इन महापुरुष का पुण्य प्रभाव अनुभव होता है।

अभयदान सनेह ऽरु भक्ति को,
मनहु एक यही अवलम्ब है।
धरम धीरज की अथवा लसै,
मधुर मूर्ति प्रसन्न प्रभामयी ॥१०॥

अहा कैसे आश्चर्य की बात है॥

अन्तरध्यान विरोध भयो, हिय सान्त सुभाय ने रंग जमायो।
ऐंठ न जानै गई कितको, अरु नम्रता ने अति मोहि नवायो॥
दर्सन सों इन के झट ही, यह जानि परै बस काऊ के आयो।
सोंचु ही तीरथ को सो प्रभाव अनूपम ऐसेनु में बिरमायो॥११॥

रा०—अहा अकस्मात् ही सम्पूर्ण दु:ख शान्त होकर न जाने क्यों अन्त:करण में स्नेह उमड रहा है। और लोग यह भी कहते हैं कि स्नेह सर्वदा किसी न किसी निमित्त पर निर्भर होता है, सब तो इन दोनों वाक्यों से एक दूसरे का निषेध हुआ, किन्तु--

यह गूढ सुभाउ को कारन कोउ, सबै जग में जिय मेल मिलावै।
नाहिं निर्भर सुन्दर रंग औ रूप पै प्रेम-प्रथा, निहचै मन आवै॥
लखि मित्र पवित्र सरोरुह होय प्रफुल्लित प्यारी छटा सरसावै।
अरु चन्द्र के होत उदोत द्रवै नित चन्दरकान्तमनी चितभावै॥१२

ल०—चन्द्रकेतु ये कौन हैं ?

च०—प्रिय, ये मेरे आराध्य चरण पूज्य तात हैं।

ल०—जैसे तुम्हारे लगते हैं वैसे ही हमारे भी लगे, क्योंकि आप तो हमें मित्र मान चुके हो न ? किन्तु रामायण के चरित्रनायक तो चार पुरुष हैं जिनमें से प्रत्येक को तुम इसी पद (तात) से सम्बोधन कर सकते हो इस लिये बतलाइये यह उनमें से कौन है ?

च०—ये हमारे सब से बड़े तात हैं।

ल०—(हर्षयुक्त हो) अहा क्या ये रघुनाथजी हैं, आज का दिन धन्य है जो इनका दर्शन हुआ (विनय और कौतुक से देख कर) हे तात, यह वाल्मीकि जी का शिष्य आपको प्रणाम करता है।

रा०—आओ प्यारे आओ, बस करो बेटा बहुत विनय होचुकी, आओ बारबार मेरे हृदय से लगकर आनन्द दो—

नव लालित प्रफुलित कमल कोमल गर्भ दल अनुहार।
तव परम सुन्दर सरस सुखप्रद सुभग साँचे सुकुमार॥
घनसार चदन लेप सम सीतल दुचद अमद।
मम अंग सों लगि देत प्रिय अनुपम परम आनन्द॥१३॥

ल०—(आप ही आप) इनका स्नेह तो देखो अकारण ही मेरे ऊपर कितना अधिक है। और फिर भी मैंने बे समझे बूझे इनसे इतना बैर बढ़ा लिया कि शस्त्रग्रहण करने तक की नौबत पहुँच गई (प्रगट) तात, आशा है कि आप मेरी इस चपलता को अब क्षमा करेंगे।

रा०—वत्स, तुमसे कौनसा अपराध बन पड़ा ?

च०—हय रक्षकों के मुख से आपके प्रताप का बखान सुनकर इन्होंने वीरता दिखलाई।

रा०—क्या डर है यह तो क्षत्रिया का भूषण ही है।

नहिं तेजधारी सहत कबहूँ, बढ़त अन्य प्रताप।
यदि तपत नभ करि सूर्य अविरत किरन कुल विस्तार।
यह प्रकृति-जन्य सुभाव उनके, अटल अपने आप।
किमि सूर्यमनि अपमान निज गिनि, वमत अग्निअपार॥१४॥

चं०—तात, इस वीर को क्रोध भी शोभा देता है देखिये इनके चलाये जृम्भकास्त्र के कारण सेना चारों ओर बेसुध पड़ी है।

रा—(देख कर) बेटा लव, अपने अस्त्र हटा लो और चन्द्रकेतु तुम भी जाकर निर्व्यापार विस्मयापन्न सेना का आश्वासन करो।

ल०—बहुत अच्छा अभी लीजिये। (ध्यान में मग्न होता है)

च०—जो आज्ञा! (जाता है)

ल०—लीजिये अस्त्र का निवारण होगया।

रा०—वत्स, इनमें अस्त्रों का प्रयोग तथा निवारण मन्त्र ही से होता है और गुरुपरम्परा से ही ये सिद्ध किये जाते हैं।

वेद द्विज रच्छानिमित, विधि आदि सुर मुनि वृन्द।
कियेउ सहसन बरस लों, तप कठिन अति स्वच्छन्द।
तप तेज बल अपनोहि तब पूरन प्रभासित, स्वच्छ।
लखेउ तिन इन सस्त्र-चय के रूप में प्रत्यच्छ॥१५॥

तदन्तर उस समन्त्र गूढ क्रिया को भगवान कृशाश्व ने सहस्र वर्ष से भी ऊपर सेवा करने वाले शिष्य विश्वामित्र के हेतु प्रदान किया और उनके प्रसाद से हमने सीखा, यह तो पहला क्रम है फिर तुमको किसने बत लाया यह हम जानना चाहते हैं।

ल०—आप से आप हम दोनों को यह अस्त्र सिद्ध हो गये।

रा०—(विचार कर) असम्भव कुछ नहीं, परम पुण्य फल की यह कोई महिमा है परन्तु द्विवचन का प्रयोग तुमने क्यों किया ?

ल०—हम दो भाई हैं जो एक ही साथ जन्मे थे।

रा०—तो वह दूसरा कहाँ है ?

(नेपथ्य में)

(भाण्डायन, भाण्डायन)

का चिरजीवि लव सँग अधार।
नृप सेन करत संग्राम घोर।
प्रिय सखा, बताबहु सकल भव।
का कहत ? 'अजी यह सत्यमेव'।
ता अब त्रिभुवन माधि भासमान।
'अधिराज' शब्द हो नासवान।
क्षत्रिय जात्यायुध अनल कांति।
याही छिन सों बस होहि शान्ति ॥१६॥

इन्द्रमना कैसी स्याम छटा, यह को है मनोहर धारन हारो।
जा कलकंठ की मजुधुनी सुनि, गातसबै पुलकात हमारो॥

ज्यों लहि नीलनिकाईभरयो नवनीरद धीर निनाद सुखारो।
उच्छव सों लहरात कदम्ब कली कुल सों तन साजि पियारो ॥१

ल०—यही मेरे बडे भाई कुश है जो भरताश्रम से लौट कर आ रहे है।

रा०—(कौतुक मे) वत्स, तो इस चिरजीव को भी यहाँ ही बुलाले।

ल०—बहुत अच्छा !

(जाता है)

(कुश आता है)

कु०—(अद्भुत हर्ष और धैर्य से धनुष उछालता हुआ)

वैवस्वतमनु के अगार सों अबे लों-जिन
दियो पाक सासन कों अभय प्रदान है।
गरब हरन गरबीन को दिगन्तमाहि,
जिनको जुलन्त छात्र-तेज को कृसान है॥
तिन सूरबसी भट भूपनिसों आजु यदि,
ठनि जाय सगराम विकट महान है।
दिव्यायुध-उग्र दुति-नीराजित गुनवारो,
तो सफल धन्य धन्य मम धनुवान है ॥१८॥

रा०—यह क्षत्रिय कुमार तो बडा पराक्रमी विदित होता है।

तृनहु सम तीनहुँ लोकनि को बल, जो नहि आँखिन के तर लावत।
अति उद्धत धीरगती सों मनो, अचला कों चले वुहुधीर नवावत॥

निज बालक बेसही में गिरि के सम गौरवता की छटाछिटकावत ।
तनधारी किधौं यह दर्प लसै अथवा परवीरता को मद आवत ॥१६॥

ल०—(आगे बढ़ कर) आर्य की जय हो।

कु०—आयुष्मन्, यह चारो ओर क्या युद्ध जुद्ध की बात चल रही है।

ल०—यह तो जो कुछ है सो है परन्तु आपको निज दर्पभाव त्याग कर इन महापुरुष के साथ विनय का बर्ताव करना उचित है।

कु०—सो किसलिये ?

ल०—देखो यह श्री रघुनाथ जी महाराज बैठे है, जो हम दोनों पर बड़ा स्नेह रखते हैं और आपसे मिलने को उत्कण्ठित हो रहे हैं।

कु०—(सोच कर) क्या ये ही जो रामायण की कथा के नायक और वेद रत्नाकर की रक्षा करने वाले हैं।

ल०—हाँ वेही।

कु०—ये तो बड़ी ही प्रशंसा के योग्य पुण्य दर्शन महात्मा हैं, परन्तु इन के समीप किस प्रकार चलना चाहिये यह समझ में नहीं आता।

ल०—जिस रीत से पिता आदि गुरुजनों के निकट जाते हैं उसी रीति से चलिये।

कु०—ऐसा क्योंकर हो सकता है।

ल०—परमपराक्रमशाली उर्मिला के पुत्र, चन्द्रकेतु बड़े ही सज्जन हैं और वह हमारे साथ मित्रभाव मानते हैं, इसलिये उनके सम्बन्ध से ये राजर्षि हमारे धर्म के पिता हुए।

कु०—और ऐसे क्षत्रियों से विनयभाव अवलम्बन करना भी कुछ लज्जा की बात नहीं है।

ल०—तो फिर आइये और ऐसे पुण्य-चरित्र महापुरुष के दर्शन कीजिये, जिनके चहरे में गम्भीरता टपकी पडती है।

कु०—(देखकर)

कस मृदुल मोहन रूप है,
प्रिय पुन्यसील अनूप है।
काथि रम्य रामायण खरी,
कवि सफल बानी निजकरी, ॥२०॥

(आगे बढ़कर) वाल्मीकि मुनि का शिष्य कुश, आपको प्रणाम करता है।

रा०—चिरजीव रहो बेटा, आओ हमारे पास आओ।

तुव निरखि रूप रसाल
जनु सजल घन-घन माल।
करे नेह-बस यह जीय,
तोकों लगावहुँ हीय ॥२१॥

(छाती से लगाकर आपही आप) तो क्या यह बालक मेरा पुत्र ही है।

मो तन सों उत्पन्न किधौं, यह बाल-स्वरूप में नेह को सार है।
कै यह चतना धातु को रूप, करै काढि बाहिर, मंजु बिहार है॥
पूरी उमग हिलोरत हीय के भावको कैधौं लसे अवतार है।
जाहीसों भेटि सुधारस लै जनु सिंचत मो सब देह अपारहै॥२२॥

ल०—तात, सूर्य की किरण आपके माथे पर पड़ रही है आइये इस शालवृक्ष की छाया में छिन भर बैठकर विश्राम कर लीजिये।

रा०—जो कुछ वत्सों को अच्छा लगे।

[सब चल कर बैठते हैं)

रा०—(आप ही आप)

बिनय युक्त, यद्यपि कुशलव की बरनि न जाई।
बैठनि उठनि अमोल चलनि बोलनि सुखदाई॥
तोऊ उच्च उदारभाव इन माहिं बिलच्छन।
दरसावत नृप चक्रवर्ति के से सुभ लच्छन।२३॥

सुलच्छन राजन क सों सुहाई अनोखी अकृत्रिम सुन्दरताई।
सबै जनके मन भाई, बढ़ावति दोउनि के तन की कमनाई॥
मयूर-जटा सन छाई लसत जिमि उज्ज्वल रत्न प्रभा रुचिराई।
लहै मकरन्द के बिन्दनसों अरबिन्द निकाई अनुपमताई॥२४॥

ये दोनो अधिकतर रघुकुल कुमारों की अनुहार गये हैं, क्योंकि-

कल कपोत सुकठसम, जिनरंग बिलसत स्याम।
बर वृषभ के से कंध, सोहत गठित अंग ललाम॥
मन मुदित, धीर मृगाधिपति सम, करत दृष्टि अलोल।
अरु मंगलीक मृदंग सम गम्भीर बोलत बोल॥२५॥

(अच्छी भाँति निहार कर) अरे केवल हमारे ही अंक के समान इनका स्वरूप नहीं है किन्तु—

निपुनता युत लखन सों सिसु युगल सुन्दर गात।
सिय रूप को अनुरूप इन में अति प्रतच्छ लखात॥
यह लगत जनुपुनि दृष्टिगोचर होत सुखमा सम।
हिय प्रिय,प्रफुल्लित,मृदुल,मञ्जुल-मो-प्रिया-सुखपद्म॥२६॥

वसैं रद उज्ज्वल मोती समान, वही छवि मोहनी मंजु रसाय।
मनोहर है तिनसों दोउ ओठ, वही श्रुति सोभा रही सरसाय॥
भले दृग स्यामल औ रतनार सुहावत, यद्यपि तेजके जनाय।
तऊ इनमें बिलसै वही चारु प्रियाके कटाच्छन की समताय॥२७॥

और यह तो वाल्मीकि जी के रहने का वन है जहाँ सीता देवी त्यागी गई थीं, इन दोनों बालकों का रूप रंग भी वैसा ही है, यद्यपि इनके कथनानुसार ये जृम्भकास्त्र इन पर स्वयं प्रकाशित हुए हैं, तथापि यह मेरा पूरा विश्वास नहीं है। सम्भव है कि मैंने जो चित्र-दर्शन के समय प्रिया से कहा कि ये अस्त्र तुम्हारे होनहार कुमारों के पास जायँगे, यह उसी का फल हो क्योंकि पहले से भी ऐसा ही सुनते हैं, कि बिना गुरू के दिये ये जृम्भकास्त्र किसी को नहीं मिलते। हृदय का सुख्य तिशय मेरे अस्थिर चित्त पर न जाने क्यों, इस प्रकार की बारम्बार ठगोरी डालता है। इसके सिवाय ये भी विचारणीय है कि—

जब दम्पति-प्रेम-प्रसूनाखिल्यो ढिंगवास तें दूनौ विनोद जगाय।
सबसों पहले मोहि जाँच परी सिसु युग्म की, गर्भ टटोरि सुहाय॥
तिय जाति सुभाय इकन्तहु में दृग नीचे किये तब मोसों लजाय॥
परि थोस कछूक के पाछें खरो मन प्यारी के ज्ञान भयो ये आय।

(रोकर) तो इनमें किसी उपाय से पूछूँ कि ये दोनों किस के बालक हैं।

ल०—तात यह क्या बात है जो,

जग मंगलप्रद बदन तुव नयन नीरकन धारि।
आतपबिन्दु-युत कंजकी, करत मंजुउनहारि ॥२९॥

कु०—भैया,

सियदवी बिना रघुनन्दन को चहुँधा सब साकहिसोक लखाई।
निज प्यारी वियोग विथासों तिन्हें, बनतुल्य, सबै जग दन दिखाई।
वह सीतल प्रेम-प्रमोद कहाँ, बिरहागिसों हीतल तप्त सदाई।
तुवमानौ पढी कबहूँ न रमायन पूछत ऐसे अजान का नाईं ॥३०॥

रा०—(आप ही आप) हा, यह तो ऐसी बेलाग बात हुई जिस मे कुछ भी निर्णय नहीं किया जा सकता, अब बस करो पूछने से क्या होगा? अरे दग्ध हृदय, ऐसा तू अकस्मात स्नेह से उबल पड़ा और एक साथ खुल गया कि लड़के भी मुझ पर तरस खाने लगे। अच्छा तो कुछ और छेड़ूँ (प्रगट) वत्स, तुम दोनों ने जो भगवान वाल्मीकि की पद्यमयी मनोहारिणी रविकुलकीर्ति प्रभा विस्तारिणी रामायण पढ़ी है उसका कुछ अंश कौतूहल वश मुझे भी सुनने की इच्छा है।

कु०—यह सम्पूर्ण ग्रन्थ ही हमने पढ़ा है। लीजिये, बालकाण्ड के अन्तिम अध्याय में निम्नलिखित भाव के दो श्लोक स्मरण आते हैं।

रा०—अच्छा बोलो बेटा।

मन्द मन्द लागि पवन जहँ, मन्दाकिन को आय।
प्यारी घुघरारी अलक, जासु दर्यो बिचलाय॥
ललित ललाट मयंक दुति, आकुल लहि तिन भार।
लहलहाति जुइ सी परी, इत उत चलि बहु बार॥
निराभरन श्रुति तउ सुभग, अस तुम्हरो मुखचन्द।
सुरति करति हिय में अजहु, भरत छनिक आनन्द॥३७॥

(रुके हुए के समान कुछ ठहर कर करुणा से)

जब ध्यान में तन्मय होत, स्वकल्पित तासु स्वरूपहि दीसिपरै।
बिरहा की दशाहू में धीरज दे, इमि प्यारो सदा दुख दूरि करै॥
भ्रम नष्ट भये पै कछू न कछू, बन जीरन को जग रूप धरै।
घबराइ महा बिलखै दुखिया जियमानौ तुसानल माहिं जरै॥३८॥

(नेपथ्य में)

[गुरु वशिष्ठ वाल्मीकि ऋषि, कौशल्या मिथिलेस।
अरुन्धती युत सभय सब, सुनि सिसु-कलह कलेस॥
वृद्ध अवस्था बस निबल, रहे दूरि सों आय।
चल्यो जात नहिं श्रम ग्रसित, तउ अति आतुर हाय॥३९॥

रा०—ओहो, क्या भगवती अरुन्धती, भगवान वशिष्ठ, माता और विदेहराज भी यहीं हैं, हाय हाय मैं उनसे किस प्रकार मिल सकूँगा (करुणा से देख कर) अहह ! तात जनक जी भी दैवयोग से यहाँ ही आ रहे हैं, हाय ! यह मुझ अभागे के लिए वज्राघात है !

जाकी करी सराहना, गुरुजन प्रमुदित होय ।
लखि स्वब्याह में तातकी, अस मिलनी रमनीय ॥
सो पितुसुख अरु बिपति यह, कैसे देखत नैन ।
किहि अभाग बस राम की, छाती आज फटै न ॥४०॥

(नेपथ्य में)

[हाय हाय]

कपल तज विसस सों, होत जासु अनुमान ।
छवि मलीन अस रघुपतिहिं, आँचकही पहचान ॥
पहले के मूछित पर, जनक नृपहि चिताय ।
सोक विकल वेसधगिरी मातहु हा धनराय ॥४१॥

रा०—हा तात, माता, हा जनक,

निमिवस और रघुवस की जो सतत मंगल कारिनी ।
तिहुँ भुवन माधि कमनीय कीरति कौमुदी विस्तारिनी ॥
ता निरपराधिनि सीय हित यह निठुर पापी राम है ।
मो तुल्य निरमोहीनु पै तुव मोह को कहा काम है ॥ ४२

(विचार कर) और नहा तो थोडा बहुत ही आगे बढ के
अब इनमें मिलूँ ।

(बढते हैं)

कु० और ल०—इधर से तात, इधर से ।

(करुणा से भरे सब बाहर जाते हैं)

अंक ७

[स्थान—रंगभूमि]

[लक्ष्मण का प्रवेश]

लक्ष्मण—आज भगवान वाल्मीकि जी ने हमें, तथा ब्राह्मण, क्षत्री आदि सम्पूर्ण पुरवासियों और सुरासुर नाग किन्नर आदि समग्र चराचर प्राणी मात्र को, अपने तपोबल के प्रभाव से एकत्रित किया है और महाराज राम ने आज्ञा दी है कि आज भगवान वाल्मीकि अपना बनाया नाटक अप्सराओं से खिलवायेंगे उसे देखने के लिये हमारा भी निमन्त्रण है सो गंगा जी के किनारे रंगभूमि रचवाकर सब दर्शकों का यथोचित प्रबन्ध कर दो। हमने मनुष्य देवता और सब जीव समूह को यथायोग्य स्थान में बैठा दिया और

जे नृप-धर्म के पालन में स्वप्रजा-अनुरंजनता सों छये हैं।
ता सँग धारि तपोवन के-मुनि-धार-व्रते जग धन्य भये हैं ॥
श्री वाल्मीकि महाऋषि के कविता-गुन-गौरव-नेह मये हैं।
देखहु आरजी-वंस सिरोमनि राम यहाँ वह आइ गये हैं ॥१॥

[श्री राम का प्रवेश]

रा०—कहो लक्ष्मण, सभ्य तो सब अपने अपने स्थान पर बैठ गये न?

ल०—हाँ जी, सब बैठ गये।

रा०—अच्छा तो इन प्यारे कुशलव को भी कुमार चन्द्रकेतु के बराबर ही स्थान मिलना चाहिये।

ल०—महाराज का स्नेह जानकर पहले ही इसका प्रबन्ध कर दिया गया है अब तो आप भी राजगद्दी पर विराजिये।

रा०—(बैठते हैं)

ल०—अच्छा भाई, अब अपना नाटक प्रारम्भ करो।

सूत्रधार—(सामने आकर)

महाशय गण, यथार्थवादी भगवान वाल्मीकि ऋषि सब चराचर प्राणी मात्र को आज्ञा देते हैं, कि हमने अपनी आप दृष्टि से देखकर अद्भुत करुणारस से पूर्ण यह जो कुछ पवित्र नाट्य प्रबन्ध आपके सामने उपस्थित किया है, उसका वृत्तान्त सब सच्चा और बड़े महत्व का है, इसलिये आप सब लोगों को उसे सावधान होकर देखना चाहिये।

रा०—बहुत ठीक कहा, ऋषि लोग ऐसे ही होते हैं उनके लिये केवल दिव्यदृष्टि से, क्या दृष्ट और क्या अदृष्ट सब धर्म प्रत्यक्ष ही के समान है। उन महाभागों की सुधामयी अनर्पतत्वशाली, रजोगुण से परे सत्व-गुणयुक्त और वचनशक्तिशालिनी वाणी किसी देश व किसी स्थान अथवा किसी काल में नहीं रुकती, अतएव उसमें शंका करना व्यर्थ है।

(नेपथ्य में)

(हा आर्यपुत्र! हा कुमार लक्ष्मण! मुझ अभागिनी का बालक हुआ चाहता है, इसलिये उसकी वेदना से बड़ी दुःखी हूँ और अकेली निराश्रय जंगल में पड़ी हूँ। मुझे पापी बाघ, भेड़िये खाने को दौड़ते हैं। हाय

अब मैं अभागिनी क्या उपाय करूँ ? कहाँ जाऊँ ? निराश हो गंगा जी में कूदी पड़ती हूँ ।)

ल०—हाय यह तो कुछ और ही बात निकली ।

सू०—*विस्वभरानि जो धरानि, तासु तनया, सिय प्यारी ।*
निरपराधिनी, जो बन कों नृप राम निकारी ॥
प्रसव-वेदना-विकल नयन सन नीर निसारति ।
हाय हाय करि गंग माहि अपने कों डारति ॥२॥

(निकलता है)

रा०—(घबड़ा कर) देवी देवी, तनिक ठहरो ।

ल०—महाराज यह तो नाटक है नाटक ।

रा०—हा देवी, दण्डक वनवास की प्यारी सखी, राम के कारण तुम्हारी यह दुर्दशा ॥

ल०—आर्य ! नाटक का अर्थ तो देखिये ।

रा०—यह लो हम तो वज्र की छाती किये देखते ही हैं ।

(पृथ्वी और गंगा एक एक बालक लिये सीता को सम्हालती दिखाई पड़ती हैं)

रा०—वत्स लक्ष्मण, जो कभी सुना न था सो सब आकर आज उपस्थित हुआ है । सम्हालो भैया, मैं मोहान्धम डूबा जाता हूँ ।

दो० दे०—

गहि धीरज हीय सुता अपने, अब सोच की मारी मरै जनि प्यारी ।
...स हमारो करै नहिं क्यों, खरी तू जगमें बड़भागनि भारी ॥

यह तेने जन साठि बालक जो, जल माहिं पुनीत विदेह-दुलारा।
इन दोउन सों चलि है फलि है, वसधा तलपै रघुवंस अगारी ॥३॥

सी०—अहो भाग जो ये पुत्र जनमे, हाय आर्य पुत्र! (मूर्छित होती है)

ल०—(चरणों पर गिरकर) आर्य आर्य, अहा भगवान ने फिर दिन फेरे, रघुवंश के कल्याण का अंकुर फिर से लहलहा उठा (देखकर) हाय, क्या आर्य बेसुध से हो रहे हैं और नेत्रों से अश्रु धारा बह रही है।

पृ०—पुत्री धीरज धरो।

सी०—भगवती तुम कौन हो और ये कौन हैं।

पृ०—यह तुम्हारी सुसराल की कुलदेवी भागीरथी हैं।

सी०—भगवती, मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ।

गं०—बेटी जैसा तुमसी पतिव्रता के लिये चाहिये वैसा ही तुम्हारा कल्याण हो।

ल०—(अलग) हम लोगों पर बड़ी कृपा हुई।

ग०—यह तुम्हारी जननी वसुन्धरा हैं।

सी०—हाय, मा आपने मुझे इस दशा में देखा।

पृ०—आओ मेरी लाडिली बेटी (छाती से लगाती है)।

ल०—(सहर्ष) अहा, पृथ्वी और गंगा दोनों का महारानी पर अनुग्रह है।

रा०—(देखकर) यह तो अत्यन्त करुणा जनक दृश्य है।

रा०—यदि विशम्भरा पृथ्वीदेवी भी व्यथित होती हैं तो अपत्य स्नेह सबमें अधिक होता है। सचमुच इस मोह माया की ग्रन्थि से सब प्राणीमात्र का हृदय गुथा हुआ है। संसार

का बन्धन तोड़ना अत्यन्त दुष्कर है, बेटी वैदेही और देवी वसुन्धरा, धीरज धरो, अपने हृदय को सँभालो।

पृ०—देवी गंगा, सीता को जनकर कैसे धीरज धरूँ—

सोऊ लयो ताहि जो सियने कियो राक्षस के बहुकाल निवास।
कैसे सह्यो अब जाय बतावहु ताही को दूसरो ये बनवास॥

गं०—या जगमें विधिना, सजनी, करनी निज हीय बिचारत जोऊ।
सो विधिसों वह हैके रहै, नाहिं ताहि मिटाय सकै जन कोऊ॥४

पृ०—ठीक कहती हो सखी, पर क्या रामचन्द्र को यह उचित था? हाय उन्होंने यह न सोचा कि—

भयो व्याह जासग में, बालपने के माहिं।
धरनी-सुता अयोनिजा, यामें पातक नाहिं॥
राजऋषी जाको जनक, जनक सिखावत जोग।
ताकी का कहि है सुता, ऐसी निपट अयोग॥
लंका सों निकरत करी अग्नि-परीच्छा जासु।
जिह तन लगि चंदन भई, अघी कहा हुतासु॥
भयो जबै बनवास, तउ, संग परी जो रोइ।
कियो सुहातो पीयको, सदा अपनपो खोइ॥
पियरी तन बलछीन अति, कँपति गर्भके भार।
याही सों रघुबंस की, सन्तति चलै अगार॥
इतनी बातनि में कछु, राम करयो परिमान।
लरकबुद्धि परि काउ का, गिन्यो न मान अमान॥५॥

सी०—हाय आर्यपुत्र की सुध क्या दिलाती हो।

पृ०—हा अब भी आर्यपुत्र तेरे कुछ लगते हैं?

सी०—[लज्जा से आँसू भरकर] ता जैसी मा कहें।

रा०—(अलग) भगवती वसुन्धरा ठीक! म इसी योग्य हूँ॥

ग—प्रसन्नहो भूतधात्री, आप तो संसार की देह हो, फिर भी अजान की भाँति अपने जामाता पर क्रोध करती हो। देखिये—

लाग लुगाइन में चरचा अपकीरति की अति फैलिरही है।
लंका में अग्नि परीच्छाभइ कोउ मानत ताहि यहाँ न सही है॥
'रास प्रजा अनुरञ्जन का घन' या रघुवंस ने टेक गही है।
एसी दसा में विचारे रघुपति को करनी तब काह चही है॥६॥

ल०—देवताही प्राणियो के अन्त करण के मर्मको भली भाँति जान सकन हैं और विशेष कर गंगाम्बी, इस कारण भगवती आपको मेरा प्रणाम है।

रा०—सचमुचही आपके अनुग्रह का प्रवाह महाराज भागीरथ के वंश मे निरन्तर बहता रहा है।

पृ०—देवी भागीरथी, म तुम्हारे ऊपर नित्य प्रसन्न ही हूँ परन्तु इस लडकी का असह्य दुःख देखकर छाती फटती है। मै क्या नहीं जानती हूँ कि राम का प्रेम सीता पर कितना है?

चाव चवाइन के चहुँ ओरसों, ह्वै कें महा मन माहिं दुखारी।
जानि चली जिय देवप्रकाप को बेबस राम तजी सिय प्यारी॥
जो अपनो तन राखिरहे, यह तासु अलौकिक धीरज भारी।
और प्रजा कृत पुण्य प्रताप है, मंजुल भूप सुमंगल कारी॥७॥

का बन्धन तोड़ना अत्यन्त दुष्कर है, बेटी वैदेही और देवी वसुन्धरा, धीरज धरो, अपने हृदय को सँभालो।

पृ०—देवी गंगा, सीता को जनकर कैसे धीरज धरूँ—

सोऊ लयो साहि, जो सियने कियो राच्छस के बहुकाल निवास।
कैसे सह्यो अब जाय बतावहु ताही को दूसरो ये बनबास॥

गं०—या जगमें बिधिना, सजनी, करनी निज हीय बिचारत जोऊ।
सो बिधिसों बुह हैकै रहै, नाहिं ताहि मिटाय सकै जन कोऊ॥४

पृ०—ठीक कहती हो सखी, पर क्या रामचन्द्र को यह उचित था? हाय उन्होंने यह न सोचा कि—

भयो ब्याह जासग में, बालपने के माहिं।
धरनी-सुता अयोनिजा, यामें पातक नाहिं॥
राजऋषी जाको जनक, जनक सिखावन जोग।
ताकी का काढि है सुता, ऐसी निपट अयोग॥
लका सों निकरत करी, अग्नि-परीच्छा जासु।
जिह तन लगि चदन भई, अघी कहा हुतासु॥
भयो जबै बनवास, तउ, सग परी जो रोइ।
कियो सुहातो पीयको, सदा अपनपो खोइ॥
पियरी तन बलछीन अति, कँपति गर्भके भार।
याही सों रघुबस की, सन्तति चलै अगार॥
इतनी बातनि में कछु, राम करयो परिमान।
लरकबुद्धि परि काउ की, गिन्यो न मान अमान॥५॥

सी०—हाय आर्यपुत्र की सुध क्यों दिलाती हो।

पृ०—हा अब भी आर्यपुत्र तेरे कुछ लगते हैं ?

सी०—[लज्जा से आँसू भरकर] तो जैसी मा कहें।

रा०—(आप) भगवती वसुन्धरा ठीक ! मैं इसी योग्य हूँ !!

ग०—प्रसन्न हो भूतधात्री, आप तो संसार की देह हो, फिर भी अजान की भाँति अपने जामाता पर क्रोध करती हो। देखिये —

लोग लुगाइन में चरचा अपकीरति की अति फैलि रही है।
लंका में अग्नि परीच्छा भई कोउ मानत ताहि यहाँ न सही है॥
'रासे प्रजा अनुरञ्जन का धन' या रघुवंस ने टेक गही है।
ऐसी दसा में विचारे रघुपति कौ करनी तब काह चही है॥६॥

ल०—देवता ही प्राणियों के अन्तःकरण के मर्म को भली भाँति जान सकते हैं, और विशेष कर गंगादेवी, इस कारण भगवती आपको मेरा प्रणाम है।

रा०—सचमुच ही आपके अनुग्रह का प्रवाह महाराज भागीरथ के वंश में निरन्तर बहता रहा है।

पृ०—देवी भागीरथी, मैं तुम्हारे ऊपर नित्य प्रसन्न ही हूँ परन्तु लड़की का असह्य दुःख देखकर छाती फटती है। नहीं जानती हूँ कि राम का प्रेम सीता पर कितना है।

चाव चवाइन के चहुँ ओरसों, है के महा मन माहिं ...।
जानि भली जिय देवप्रकोप कौं बरबस राम तजी ...॥
जो अपनो तन राखि रहे, यह तासु अलौकिक ...
और प्रजा-कृत पुण्य प्रताप है, मंजुल भूप सुभाग ...

रा०—(अ०) माता पिता लड़का पर दया न करे तो कैसे काम चले।
सी०—(रोती हुई हाथ जोड़कर) मा, मुझे अपने मे लीन कर लो।
रा०—(अ०) देखे और क्या कहे ?
ग०—नही बेटी ऐसा मत कहो, तुम सहस्त्र वर्ष तक अभी ससार मे और रहो।
पृ०—बेटी अभी तो तुझे इन बच्चो को पालना है।
सी०—मैं तो अनाथ हूँ, फिर इनका कौन होगा।
रा०—रे बज्र हृदय, अभीतक फटता नहीं ?
ग०—तुम तो बेटी, सनाथ हो, फिर अपने को अनाथ क्यों कहती हो ?
सी०—मैं अभागिनी हूँ, सनाथ किस प्रकार होसकती हूँ।

दोनों दे०—*जगत की जय मगल-कारिणी,*
फिरहु क्यों अपको अपमानती।
बिमल पाय सिये तुव सगकों,
बढति और हमार पवित्रता ॥८॥

ल०—(राम से) महाराज सुनिये ये देवी क्या कह रही हैं।
रा०—ससार सुने।

(नैपथ्य में बड़ा कड़ा शब्द होता है)

ग०—बात तो कोई बड़े आश्चर्य की है।
सी०—अरे आकाश क्यों चमक उठा है।
दो० दे०—जान लिया,

जिनहि पाइ मुनीस कृशास्व सों,
सुभग सुन्दर कौसिक देव ने ।
पुनि दिय मनभावन राम कों
करि कृपा वर विचार स्वसिष्य परम्परा ।
लसत ये तव वे सब सस्त्र हैं,
अवसि जृम्भक सों युत जानिये ।
करि विचित्र महा निज तेज जो,
प्रगट आइ भये अब ही यहाँ ॥६॥

(नेपथ्य में)

नमत हैं तुमको सिरसा सिये,
हम मिलि तुम पुत्रनि आजसों
सुघर चित्र दिखावत है जबै,
यह निदेस दियो रघुवीर ने ॥१०॥

सी०—अहो भाग्य ये सब परत्र देवता हैं, हा आर्यपुत्र, तुम्हारे ही अनुग्रह से ये अबभी चमक रहे हैं।

ल०—(राम से) आर्य, आपने सीताजी से कहा भी था कि ये सब तुम्हारी सन्तान की सेवा में रहेंगे, वैसा ही होरहा है।

दा० दे०—यह करत मंजु प्रनाम तुमको सस्त्रदेव जु आज ।
धनि धन्य हो जिनकों गह्यो कर कमल में रघुराज ॥
ये काल जब चिन्तन करैं, तब दरस दीजो आन ।
हम देत अब आसीस, नित नव होइ तुव

रा०—लहि गगमाहि-प्रसादे विस्मै अपार आवै ।
सुत जन्म-सत्यता हू आनन्द हिय जगावै ॥
इन सों गुही गहाई करुना तरग भारी ।
भरि छोभसों करें अरु कैसी दशा हमारी ॥१२॥

दो॰ दे०—मौज करो बेटी इन दोनो पुत्रों को राम ही के समान जानों

सी०—अच्छा, मा यह तो सब ठीक है किन्तु फिर इन दोनों का क्षत्रियोचित सस्कार कौन करेगा ।

रा०—हा, जो वशिष्ठ-रक्षित रघुवस की निकाई ।
श्री के समान सुन्दर सब भाँति सों सुहाई ॥
सुत-सस्कार-कर्ता ता सीय ने न पायो ।
कैसो प्रपच विधिना ऐसो समै दिखायो ! ॥१३॥

ग०—बेटी, तुम इसकी चिन्ता न करो, दोनो बालक दूध छूटने के पीछे महात्मा वाल्मीकि को सोप दिगे जायँगे वही इनके क्षत्रियोचित कर्म को करेंगे ।

जिमि महाऋषी वसिष्ठ अरु, सतानन्द मतिवान ।
तिमि गुर रघुनिमिबस के, वालमीकि भगवान ॥१४॥

रा०—भगवती ने अच्छा विचार किया है ।

म०—आर्य इन घटनाओं मे मुझे बिलकुल निश्चय होता है कि ये लवकुश यही हैं क्योंकि,

इन्हें जन्म सों सिद्ध अस्त्र तुम जानिये।
वालमीकि के शिष्य इन्हें ही मानिये॥
तुम्हरी ही अनुहारि गये दोउ धीर हैं।
बारह बारह बरस बैस के वीर हैं॥१५॥

रा०—वत्स, यह दोनों मेरे पुत्र हैं कि नहीं, इस सन्देह के कारण कुछ समझ नहीं पड़ता, इतना घबड़ा रहा हूँ।

पृ०—आओ बेटी, चलो अब रसातल को पवित्र करो।

रा०—हाय प्रिया तू रसातल चली गई!

सी०—मा, ऐसा करो कि मैं तुम में समाजाऊँ मुझसे संसार के दुख सहे नहीं जाते।

रा०—मेरे क्या उत्तर देती हैं।

पृ०—देह छूटने तक मेरे कहने से इन बच्चों की रक्षा कर, पीछे जैसा तुझे रुचे वैसा करना।

गं०—यह भी ठीक है।

(गंगा, पृथ्वी और सीता जाती हैं)

रा०—अरे क्या वैदेही पृथ्वी में समा ही गई! हा दण्डक बनवास की प्यारी सखी! सती शिरोमणि! हा कष्ट! मुझे अकेला छोड़ तू लोकान्तर को चली गई! हाय देवी हाय!

०—रक्षा करो भगवान वालमीकि रक्षा करो, हाय क्या यही आपके नाट्य प्रबन्ध का सारा परिणाम था!

(नपथ्य में)

(सब बाजों गाजों को बन्द करो। अरे सब चराचर प्राणी मात्र क्या मनुष्य और क्या देवता सब के [illegible] भगवान वाल

रा०—लहि गगमाहि-प्रसादै विस्मै अपार आवै ।
सुत जन्म-सत्यता हू आनन्द हिय जगावै ॥
इन सों गही गुहाई करुना तरग भारी ।
भरि छोभसों करै अब कैसी दशा हमारी ॥१२॥

दो॰ दे०—मौज करो बेटी इन दोनो पुत्रो को गम ही के समान जानो

सी०—अच्छा, मा यह तो सच ठीक है किन्तु फिर इन दोनो का क्षत्रियोचित सस्कार कौन करेगा ।

रा०—हा, जो वशिष्ठ-रक्षित रघुवस की निकाई ।
श्री के समान सुन्दर सब भाँति सों सुहाई ॥
सुत-सस्कार-कर्ता ता सीय ने न पायो ।
कैसो प्रपच विधिना ऐसो समै दिखायो ! ॥१३॥

ग०—बेटी, तुम इसकी चिन्ता न करो, दोनो बालक दूध छूटने के पीछे महात्मा वाल्मीकि को सोप दिये जायँगे वही इनके क्षत्रियोचित कर्म को करेंगे ।

जिमि महाऋषी वसिष्ठ अरु, सतानन्द मतिवान ।
तिमि गुर रघुनिमिवस के, वालमीकि भगवान ॥१४॥

रा०—भगवती ने अच्छा विचार किया है ।

ल०—आर्य इन घटनाओं मे मुझे बिलकुल निश्चय होता है कि ये लवकुश यही हैं क्योंकि,

इन्हें जन्म सों सिद्ध अस्त्र तुम जानिये।
बालमीकि के शिष्य इन्हें ही मानिये॥
तुम्हरी ही अनुहारि गये दोउ धीर हे।
बारह बारह बरस बैस के वीर हैं॥१५॥

रा०—वत्स, यह दोनो मेरे पुत्र हैं कि नहीं, इस सन्देह के कारण कुछ समझ नहीं पडता, इतना घबडा रहा हूँ।

०—आओ बेटी, चलो अब रसातल को पवित्र करो।

०—हाय प्रिया तू रसातल चली गई।

०—मा, ऐसा करो कि में तुम में समाजाऊँ, मुझसे संसार के दुख सहे नहीं जाते।

०—देखें क्या उत्तर देती हैं।

—दूध छुटने तक मेरे कहने से इन बच्चों की रक्षा कर, पीछे जैसा तुझे रुचे वैसा करना।

—यह भी ठीक है।

(गंगा, पृथ्वी और सीता जाती हैं)

—अरे क्या वैदेही पृथ्वी में समा ही गई! हा दण्डक वन वास की प्यारी सखी! सती शिरोमणि! हा कष्ट! मुझे अकेला छोड़ तू लोकान्तर को चली गई! हाय देवी हाय!

—रक्षा करो भगवान बालमीकि रक्षा करो, हाय क्या यही आपके नाट्य प्रबन्ध का सारा परिणाम था!

(नेपथ्य में)

(सब बाजों गाजों को बन्द करो। अरे सब चराचर प्राणी मात्र, क्या मनुष्य और क्या देवता सब के सब देखो भगवान बाल-

रा०—लहि गगमहि-प्रसादे विस्मै अपार आवै ।
सुत जन्म-सलाता हू आनन्द हिय जगावै ॥
इन सों गहीं गहाई करुना तरग भारी ।
भरि छोभसों कर अब कैसी दशा हमारी ॥१२॥

दे०—मौज करो बेटी इन दोनों पुत्रों को राम ही के समान जानों

सी०—अच्छा, मा यह तो सब ठीक है किन्तु फिर इन दोनों का क्षत्रियोचित सस्कार कौन करेगा ।

रा०—हा, जो वशिष्ठ-रक्षित रघुवस की निकाई ।
श्री के समान सुन्दर सब भाँति सों सुहाई ॥
सुत-सस्कार-कर्ता ता, सीय ने न पायो ।
कैसो प्रपच बिधिना ऐसो समै दिखायो । ॥१३॥

ग०—बेटी, तुम इसकी चिन्ता न करो, दोनों बालक दूध छूटने के पीछे महात्मा वाल्मीकि को सौंप दिये जायँगे वही इनके क्षत्रियोचित कर्म को करेंगे ।

जिमि महाऋषी वसिष्ठ अरु, सतानन्द मतिवान ।
तिमि गुर रघुनिमिवस के, वालमीकि भगवान ॥१४॥

रा०—भगवती ने अच्छा विचार किया है ।

ल०—आर्य इन घटनाओं से मुझे बिलकुल निश्चय होता है कि

इन्हें जन्म सों सिद्ध अस्त्र तुम जानिये ।
वालमीकि के शिष्य इन्हें ही मानिये ॥
तुम्हरी ही अनुहारि गये दोऊ धीर हैं ।
बारह बारह बरस बैस के वीर हैं ॥१५॥

रा०—वत्स, यह दोनों मेरे पुत्र हैं कि नहीं, इस सन्देह के कारण कुछ समझ नहीं पडता, इतना घबडा रहा हूँ ।

पृ०—आओ बेटी, चलो अब रसातल को पवित्र करो ।

रा०—हाय प्रिया तू रसातल चली गई !

सी०—मा, ऐसा करो कि मैं तुम में समाजाऊँ, मुझसे संसार के दुख सहे नहीं जाते ।

रा०—देखें क्या उत्तर देती हैं ।

पृ०—दूध छुटने तक मेरे कहने से इन बच्चों की रक्षा कर, पीछे जैसा तुझे रुचे वैसा करना ।

रा०—यह भी ठीक है ।

(गंगा, पृथ्वी और सीता जाती हैं)

रा०—अरे क्या वैदेही पृथ्वी में समा ही गई ! हा दण्डक वनवास की प्यारी सखी ! सती शिरोमणि ! हा कष्ट ! मुझे अकेला छोड तू लोकान्तर को चली गई ! हाय देवी हाय !

ल०—रक्षा करो भगवान वालमीकि रक्षा करो, हाय क्या यही आपके नाट्य प्रबन्ध का सारा परिणाम था !

(नेपथ्य में)

(सब बाजों गाजों को बन्द करो । अरे सब चराचर प्राणी मात्र क्या मनुष्य और क्या देवता सब के सब रक्षा भगवान वाल

सो०—[भय से काँपकर राम के ललाट पर हाथ फेरती है]
सावधान हो जो ! आर्यपुत्र सावधान हो !!

रा०—[आँखें खोलकर आनन्द से] अहा, यह क्या है ?
[सीता को कुछ मुसकराकर देख और आनन्द से चकित हो]
आहा क्या है ? स्वप्न ? कि सचमुच ही वैदेही है
[फिर देखकर लाज से] क्या मेरी माता भगवती, अरुन्धती
शृङ्गीऋषि और शान्ता समेत सब बड़े बूढ़े प्रसन्न हो रहे हैं ?

अ०—वत्स ये देखो महाराज भागीरथ के कुल की देवता सर्वदा
अनुग्रहशील भगवती भागीरथी हैं।

[नेपथ्य में]

[जगत्प्रभु रामचन्द्र स्मरण करो तुमने चित्र दर्शन के
समय कहा था कि हे गंगा माता ? तुम वधू सीता पर
सर्वदा अरुन्धती के समान अपनी स्नेहमयी दृष्टि रख
ना सो मैं आज अपने ऋण से उऋण हो गई]

अ०—और ये बेटा तुम्हारी सास वसुन्धरा है।

[फिर नेपथ्य में]

[आयुष्मान तुमने सीता त्यागते समय कहा था कि
भगवती वसुन्धरा तुम अपनी प्यारी बेटी जानकी का
ध्यान रखना तुम्हारा कहना मैंने सो उन भगवती गंगा
से मेरे स्वामी के समान और जामाता होने से पुत्र
के समान हो इसलिये मैंने तुम्हारा कहना कर दिया।]

—मुझ जैसे महा अपराधी पर देवियों ने कैसे कृपा की ? मैं
आप दोनों को प्रणाम करता हूँ।
[फिर नेपथ्य में]
[दो० दे०—चिरंजिया प्यारे और ... जी
... उन के

अ०—प्यारे पुरवासीगण, इस समय जिस प्रकार भगवती भागीरथी तथा देवी वसुन्धरा ने इतनी बड़ाई करके मुझ अरुन्धती को सीता सौंपदी उसे तो आपने प्रत्यक्ष देख ही लिया, इसके पहले भगवान अग्निदेव द्वारा सीता के पुण्य चरित्र की परीक्षा हो चुकी है। और अब भी देखिये ब्रह्मादिक देव इसके गुणगान कर रहे हैं। अब आप लोगों से पूछना यह है कि ऐसी पुनीत पतिव्रता यज्ञ से उत्पन्न हुई परम प्रसिद्ध सूर्यवंश की वधू सीता देवी को फिर ग्रहण करना उचित है या नहीं। इस विषय में आप की क्या सम्मति है।

ल०—इस प्रकार भगवती अरुन्धती के धिक्कारने से लज्जित होकर अब तो पुरवासी तथा सब संसार के लोग महारानी के हाथ जोड़ रहे हैं, और इन्द्रादिक लोकपालों के साथ मरीचादि सप्तर्षि स्वनाम धन्य सीता जी के सिर पर पुष्प बरसा रहे हैं।

अ०—जगदीश रामचन्द्र,

यह तुम्हरी सहधर्मिनी, प्रियाधर्म अनुसार।
परम प्रेम सों कीजिये, याको अङ्गीकार॥
जो सुबरन की प्रतिकृती, तुव ढिग, ताके ठौर।
देउ पुण्य प्रकृती सियहिं, आसन-रघुकुल-मौर॥२०॥

सी०—[आप ही आप] देखे आर्यपुत्र मेरा दु:ख मेटते हैं या नहीं।

—बहुत अच्छा भगवती का आदेश सिर माथे।

—म भी कृतार्थ हुए।

०—मैं तो जी गई।

ल०—महारानी यह निर्लज्ज तुम्हारे चरणों पर गिरता हूँ।

सी०—वत्स तुम्हारी चिरायु हो।

अ०—भगवन् वाल्मीकि सीता के गर्भ से जो रामचन्द्र जी के लडके कुशलव है उन्हें भी ले आइये।

[जाती है]

रा० और ल०—अहा हमने ठीक विचारा था।

सी०—[आँखों म आँसू भरकर घबराई सी] कहाँ हैं मेरी प्यारी जुगल जोडी (कुशलव के साथ वाल्मीकि का प्रवेश)

ना०—भैया कुशलव, यह रघुना थ जी तुम्हारे पिता हैं, यह लक्ष्मण तुम्हारे पिता के कनिष्ठ भ्राता हैं, यह सीतादेवी तुम्हारी जननी तथा यह महर्षि जनक तुम्हारे नाना हैं।

सी०—(हर्ष, करुणा, आश्चर्य से देखकर) क्या यहाँ तात जनक भी हैं।

कु० ल०—हा तात, हा माता, हा नाना।

रा० ल०—(हर्ष से कुशलव को गले लगा के) निसन्देह बेटा तुम दोनों बडे भाग से मिले हो।

सी०—आओ मेरे दोनों लाल, आज तुम्हारी मा का नया जन्म हुआ है आओ बेटा मेरी छाती मे लग जाओ (दोनों को छाती से लगाकर रोती है)

कु० ल०—(मिलकर) हम दोनो धन्य हैं।

सी०—(वाल्मीकि की ओर) भगवन तुम्हारे पाँव पडती हूँ।

वा०—ऐसी ही सकुटुम्ब सुख भोगती चिरायु हो।

सी०—आहा ! तात, जनक, कुलगुरु वशिष्ठ, सास कौशिल्या जी पति के सहित शान्तादेवी ? लक्ष्मण के

अयतापहरण चरणारविन्दों के संग प्यारे कुशलव भी दिखाई पड़ते हैं आज अपने भाग्योदय को देखकर शरीर आनन्द से फूला नहीं समाता।

वा०—(उठकर देखके) लीजिये लवणासुर को मार मथुरेश्वर शत्रुघ्न भी आगये।

ल०—जब अभ्युदय होता है तब कल्याण की सब बातें एक साथ ही मिल जाती हैं।

रा०—सीताकी प्राप्ति, पुत्रों का दर्शन और लवणासुर का वध आदि कल्याणों का इस समय अनुभव कर रहा हूँ तो भी न जाने क्यों मुझे प्रतीति नहीं होती, ऐसा मालूम होता है मानो मैं स्वप्न देख रहा हूँ अथवा जब अभ्युदय का तार बँध जाता है तब ऐसा ही जान पड़ता है।

वा०—प्यारे रामचन्द्र कहिये आपका और क्या प्रिय

रा०—इससे अधिक अब क्या मनोरथ होगा,

कलिमलकुल दूर करनि श्रेयद, मन-माद
गाथा यह दुख-दरनि, पु
मंगलमय जगमगाय, भुवन-मोहि
जग की जनु गंग माय, ता
शब्द-ब्रह्म को प्रकास, जिह
तिह सुप्रौढ़-बुधिविलास,
अभिनय कृत-भासमान, प
संत जन याहि कराहि पान

॥ इति उत्तर राम

शब्दार्थ-प्रदीप

(इसमें कुछ असाधारण शब्द मुख्यकर पद्य के उन शब्दों का स्वरूप तथा अर्थबोध कराया गया है जो प्रायः ब्रज की बोली में प्रचलित हैं ।)

पृष्ठ-१—कवि-मग दरसावन = आदि कवि वाल्मीकि । रामचरित नित नव रसाल पिक = राम के नित नये चरित्र रूपी आमों में रहने वाली कोयल । शब्द-शक्ति धर ब्रह्म = जो ब्रह्म अनुभव में नहीं आता वह शब्दों में व्यक्त होता है । षट्पदा = भ्रमरी, सरस्वती, छप्पय छंद ।

पृष्ठ-२—पौलस्त्य कुल धूम-केतु = पुलस्त्य की संतान के लिए अग्नि स्वरूप । विरदावली = कीर्ति । चारण = भाट । सत्कारार्थ = स्वागतार्थ ।

पृष्ठ-३—परतीत = प्रतीति । अनल परीच्छा = अग्नि परीक्षा ।

पृष्ठ-४—अभिनन्दन = स्वागत । द्यौस = दिवस (दिन) उच्छव = उत्सव ।

अंक १

पृष्ठ-५—गृही = गृहस्थ । कारमिक = कर्म करने वाला ।

पृष्ठ-६—अष्टावक्र = विद्वान ऋषि थे, यह आठ जगह से वक्र (टेढ़े) थे ।

पृष्ठ-७—अनुधावत = पीछे दौड़ता है ।

पृष्ठ-८—विथा = व्यथा, दुःख ।

पृष्ठ-९—मनभावत = मनोरथ । अजोग = अयोग्य ।

पृष्ठ-१०—जृम्भकास्त्र (जृम्भकास्त्र) = एक प्रकार के अस्त्र जिनसे शत्रु नींद ग्रसित हो जँभाई लेने लगते हैं । [illegible] सके । प्रभासित = प्रकाशित । अभिराम = सुन्दर ।

पृष्ठ-११—सगुन सायत = शुभ घड़ी, मुहूर्त । कंकन = [illegible] के समय जो सूत्र हाथ में बाँधा जाता है ।

त्रयतापहरण चरणारविन्दों के संग प्यारे कुशलव भी दिखाई पडते है आज अपने भाग्योदय को देखकर शरीर आनन्द से फूला नहीं समाता।

रा०—(उठकर देखकें) लीजिये लवणासुर को मार मथुरेश्वर शत्रुघ्न भी आगये।

ल०—जब अभ्युदय होता है तब कल्याण की सब बाते एक साथ ही मिल जाती हैं।

रा०—सीताकी प्राप्ति, पुत्रो का दर्शन और लवणासुर का वध आदि कल्याणो का इस समय अनुभव कर रहा हूँ तो भी न जाने क्यो मुझे प्रतीति नही होती, ऐसा मालूम होता है मानो मै स्वप्न देख रहा हूँ अथवा जब अभ्युदय का तार बँध जाता है तब ऐसा ही जान पडता है।

वा०—प्यारे रामचन्द्र कहिये आपका और क्या प्रिय करं।

रा०—इससे अधिक अब क्या मनोरथ होगा, तथापि —

कलिमलकुल दूर करनि श्रेयद, मन-मोद भरनि
गाथा यह दु ख-दरनि, पुण्य-रासिनी।
मगलमय जगमगाय, भुवन-मोहिनी सुहाय,
जग की जनु गग माय, ताप नासिनी।
शब्द-ब्रह्म को प्रकास, जिह कविउर करत रास,
तिह सुप्रौढ-बुधिविलास, मदचिकासिनी।
अभिनय कृत-मासमान, चरितामृत बिसद जान,
सत जन यहि कराहि पान, हिय बिलासिनी॥२१॥

(सब जाते है)

॥ इति उत्तर रामचरित नाटक ॥

शब्दार्थ-प्रदीप

(इसमें कुछ असाधारण शब्द मुख्यकर पद्य के उन शब्दों का स्वरूप तथा अर्थबोध कराया गया है जो प्रायः ब्रज की बोली में प्रचलित हैं ।)

पृष्ठ-१—कवि-मग-कमलावन = आदि कवि वाल्मीकि । रामचरित-नित नव-जलद फिर = राम के नित नये चरित्र रूपी आकाश में रहने वाले बादल । शब्द-प्रति पर ब्रह्म = जो ब्रह्म अनुभव में नहीं आता केवल शब्दों में वर्णन होता है । षट्पदी = भ्रमरी, सरस्वती, छप्पय छन्द ।

पृष्ठ-२—पौलस्त्य कुल धूम-केतु = पुलस्त्य की सन्तान के लिये अग्नि स्वरूप । विरदावली = कीर्ति । चारण = भाट । सत्कारार्थ = स्वागतार्थ ।

पृष्ठ-३—परतीति = प्रतीति । अनल परीच्छहु = अग्नि परीक्षा ।

पृष्ठ-४—अभिनन्दन = स्वागत । याम = दिवस (दिन) । उद्भव = उत्सव ।

अंक १

पृष्ठ-५—गृही = गृहस्थ । धारमिक = धर्म करने वाला ।

पृष्ठ-६—अष्टावक्र = विद्वान् ऋषि थे, वह आठ जगह से वक्र (टेढ़े) थे ।

पृष्ठ-७—अनुधावत = पीछे भागता है ।

पृष्ठ-८—बिथा = व्यथा, दुःख ।

पृष्ठ-९—मनभावन = मनोरथ । अजोग = अयोग्य ।

पृष्ठ-१०—जम्भकास्त्र (जृम्भकास्त्र) = एक शस्त्र जिसके चलाने से शत्रु नींद से भ्रमित हो जँभाई लेने लगते हैं । अथक = बिना रुके । प्रभासित = प्रकाशित । अभिराम = सुन्दर ।

पृष्ठ-११—सगुन सायत = शुभ घड़ी, मुहूर्त । कंकन = विवाह के समय जो सूत्र हाथ में बाँधा जाता है ।

पृष्ठ-१२—समागम = भेट।

पृष्ठ-१३—मोह गई = अचेत होगई। परिरम्भन = आलिङ्गन।

पृष्ठ-१४—यतिनु आसरम = तपस्वियों के आश्रम। आतिथेय = अतिथि सत्कार करने वाला। प्रस्रवरणाचल = प्रस्रवरण पर्वत। सुरति = स्मृति।

पृष्ठ-१५—प्रतिकार = बदला। सालत = दुख देता है, छेदता है। निजन बन = निर्जन जंगल। वज्जुर हियो = वज्र हृदय। हिय-मरम-घाय = हृदय पर घाव करने वाली।

पृष्ठ-१६—उन्मुक्त कण्ठ = धाड़ मार कर। ढरे = निकले।

पृष्ठ-१७—पुहुप = पुष्प।

पृष्ठ-१८—कनिकान = बूंदें। इन्दु-मयूख = चन्द्रमा की किरन। विचुम्बित = चुम्बन की हुई, छुई हुई।

पृष्ठ-१९—निहचै बैठति नाहि = ठीक २ समझ में नहीं आता। प्रबोध = जागृत अवस्था। थिर = स्थिर। तृप्ति सुधा = तृप्ति रूपी अमृत। सिराहना = तकिया।

पृष्ठ-२०—सुख-सजोग = सुख मिलना। जनापवाद = लोगों द्वारा निंदा।

पृष्ठ-२१—विराम = विश्राम। लच्छनमय = लक्षण वाली। सघन = बादल की भाँति। मघन = घना। परनत = प्रणत।

पृष्ठ-२२—बुरौ चवाउ = निन्दा। अतुल = अतोल। कूकर = कुत्ता। धिक्कार = लालन देना।

पृष्ठ-२३—निरत = लगा हुआ। परतीति = प्रतीति। निठुर = निर्दय। मोद जई = आनन्द पैदा करने वाली। सनेह-(स्नेह) छुई

पृष्ठ–२५—हियरा = हृदय ।

पृष्ठ–२७—कारज = कार्य । अठयाम = अष्टयाम । अमीस = अशीष ।

पृष्ठ–२८—अर्घ = षोडशोपचार म से एक, जल, दूध, दही, सरसों, कुशाग्र, तंदुल जो मिला कर देवता को देना । ठाहरिस निरमाउ = छाँह में ठहरो । फरान्हर = फलाहार । काऊ = किसी दूसरे का ।

पृष्ठ–२९—वृत्ति = स्वभाव । अगार पिछार = आगे पीछे । विजे = विजय सरसा सरसावै = आनन्ददायक जीत होती है । निवसत = रहते हैं । जगमधि = जग में । पारायण = आद्योपान्त पाठ ।

पृष्ठ–३०—शैशव अवस्था = बालपन । अर्पण किये = दे दिये । मुग्ध = मोहित ।

पृष्ठ–३१—नितरत = खौलते हैं । किरन आभास = प्रकाश । दले = दला । अनुष्टुप = एक प्रकार का छन्द होता है । वाग्देवी = सरस्वती वाणी । विहरत = विहार करते हैं । स्वच्छन्द = स्वतंत्र ।

पृष्ठ–३२—पद्मयोनि = ब्रह्मा । ब्रह्मप्रकाशधारी = ब्रह्मज्ञानी । अन्तर्द्धान = छिपना, अदृश्य हो जाना । पल्लवित = पल्लव पत्तों आ जाना । प्रस्रवणाचल = प्रस्रवण नाम का पर्वत । जनस्थान = दण्डकवन ।

पृष्ठ–३४—सूनी = (शून्य) खाली । हिया = हृदय । जक्त = जगत अभिमन्त्रित = मंत्रों द्वारा पवित्र किया हुआ ।

पृष्ठ–३५—अकालमृत्यु = बिना वक्त मरना । खरारी = राम, खर राक्षस के बैरी । घामला निकुन = लताओं से घिरा हुआ ...। कपोत पुंज = कबूतरों का समूह ।

पृष्ठ–३६—छाँहरि = छाया । गंडस्थल = कपोल, कनपटी । घर्मोल = ... के मारे हुए । कूलद्रुम = किनारे के पेड़ । ज्यावन = जिन्दा करने को । ... = तलवार । विजन = निर्जन । नृशंस = निर्दय ।

पृष्ठ-३७—रक्षत = बचाते हैं। तारिनी = संसार सागर से पार करने वाली। ध्रुव प्रकाश = ध्रुव तारे का उजेला। त्रायक = तारने वाले। शरणध्वजा = विष्णु। शरणद = शरण देने वाले। भावन = रुचिर। भक्ति-धनी = भक्त।

पृष्ठ-३८—गोत्र = (अवध) अयोध्या। सस्य = अनाज। निनाद = भर भर शब्द करते हुए। गर्भ-कानन = जंगल का भीतरी भाग।

पृष्ठ-३९—विन्ध्याटवी = विन्ध्यादेवी का जहाँ पर स्थान है उसके आस पास का जंगल। माहित = मालूम।

पृष्ठ-४०—रमनीय = सुन्दर। सरीखे = समान। क्रीड़ास्थली = खेलने की जगह। चैतन्य = चैन। शीतलभाव = हृदय को सच्चे लगते हैं। जम्बु = जामुन।

पृष्ठ-४१—गिरि गुंज = पर्वत की गुंजार। कसाय = कसैली शक्रलोक = बैकुण्ठ। फलाहर = फलाहार। नाये = नहीं थे।

पृष्ठ-४२—परन = (पर्ण) पत्ते। झालरें = घने पत्ते हुए

पृष्ठ ४३—चिर संतापज = बहुत दिनों के संताप से उत्पन्न। शाद्वल = घर्षों की अनी। सरिस्रोत = नदी का स्रोत। पुलिन = रेत, बालू विरल = विरला (कोई कोई)। निमग्न ये दशाते हैं = पक्षी निन्दा दिलाते हैं।

पृष्ठ-४४— उद्दीपन = दीप्तकारक।

पृष्ठ-४५—बाट देखना = प्रतीक्षा करना। मूक = चुप। सरप रूप = सर्प का अभिमान। भ्रुकुटि = मिमिट कर।

पृष्ठ-४६—कुहरनि = कन्दरा। नदति = शब्द करती है। उत्तंग = ऊँचे। गाढ़ चपेट = चोट खाकर।

१—धातु पुट पाक = धातु को सरवा में रख कर बेल लो कर स्वा बनाते हैं।

पृष्ठ-४८—परि-सीकरनु सीतल = नदी के छींटों से शीतल की हुई। सन्तान का उत्पत्ति काल।

पृष्ठ-५०—ओप = आभा। मोचति = बहाती है। सोगसनी = शोक भरी हुई। बिलुनित = नुची हुई। घाम = धूप। कलित = सुन्दर। की परनानि = शल्लकी के पत्ते। करभक = हाथी के बच्चे। ।—खोद्ता है।

पृष्ठ-५१—कुलकि = कूदकर। रुरि = हमला करके। धाराधर = [illegible]। अस्फुट = अस्पष्ट।

पृष्ठ-५२—ठाम = स्थान।

पृष्ठ-५३—कल्यानि = कल्याण करने वाली। सुपरस = सुन्दर स्पर्श।

पृष्ठ-५४—किधौं = या तो। सार = तत्व। सतप्त = तापित। जीवनी = सजीवनी बूटी।

पृष्ठ-५५—कोरा = डाली, बनावटी। वज्रमयी = कठोर हृदया।

पृष्ठ-५६—दुचिताई = दुभिधा। पसिबो = छूना।

पृष्ठ-५७—जटायुगिरि = जहाँ जटायु गृद्ध रहता था।

पृष्ठ-५८—कलित कलिकन सम = सुन्दर कलियों के समान। लवलि पल्लव = लवलि के पत्ते। कानन लोर = कानों की लोर। रन = हाथी। यौवन छयो = यौवन छाया हुआ है। विधुराइ = [illegible] [illegible] = छाता।

पृष्ठ-५९—ससारिणी = वह जो ससारी माया में लिप्त हो। स्नेहातिशय = अत्यत प्रेम। गुन = रस्सी।

पृष्ठ-६०—कलोलत = कलोल करता है। सिखाएँ = चोटियाँ। आलापत = शब्द करता है। भ्रम्यौ फिरस्थेनु लै। चारों ओर घूमा। पलक = पलक। नीप = कदम्ब का पेड़।

पृष्ठ–८२—सीरध्वज = सीता के पिता का नाम। कृतकृत्य = धन्य धन्य।

पृष्ठ–८४—नृप अछ्त = राजा की उपस्थिति में। विमूढ़ = मूर्ख। अभिन्नउर = एक ही हृदय वाले। मध्यस्थ = बिचौलिया।

पृष्ठ–८५—पूर्न = पूरा, पूर्ण। कर्णामृत गुप्तरहस्य = कानों के लिये अमृत समान छिपा भेद। चख = (चक्षु) आँखें। सिरी (श्री) शोभा। विसिख = बाण।

पृष्ठ–८७—रदराची = रदाछी। लसै = दीख पड़ता है। निकाई = शोभा। सूछम = सूक्ष्म छोटा। अजान = अज्ञानी। रञ्च = थोड़ा। खेंचतु वरिआइ = हठात् अपनी ओर खींचता है। आरबल = आयु।

पृष्ठ–८८—पद्म गर्भगतदल = कमल के भीतर की पत्तियाँ।

पृष्ठ–८९—उनहारि = समान। प्रतिविम्बित = प्रतिबिम्ब दीख पड़ता है।

पृष्ठ–९३—अपमानित मान धनी = निरादर किया हुआ यशस्वी। जरठ = बूढ़ा।

पृष्ठ–९४—सुम्म = पैर। परवस = अनिश्चित।

पृष्ठ–९५—पराभव = हार। ललकार = चैलेंज, चुनौती।

पृष्ठ–९६—धुजा = (ध्वजा) निशान।

[illegible] = अचानक ही। जड़ीभूत = जड पदार्थ के रूप में।

पृष्ठ–७१—लवलो दल = लवली के पत्ते। स्वेग्मय = पसीना से पूर्ण भरा हुआ। सन = से। मन-सुद-दानि = मन को आनंद देने

[illegible]७२—स्रम-सीकर-कन = पसीना की बूँद। पिय तन परस =